नैतिक शिक्षा

कक्षा 9

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

आमुख

आज विश्व में विज्ञान बहुत तीव्रगति से प्रगति कर रहा है। वैज्ञानिक व औद्योगिक क्रान्तियों ने धर्म व मोक्ष की जगह अर्थ और काम को इतना प्रबल बना दिया है कि परम्परागत जीवन मूल्यों का निरन्तर पराभव होता जा रहा है। भोगवादी संस्कृति उत्तम जीवन मूल्यों को नष्ट करने पर तुली है, जिससे लोग नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करके स्वार्थसिद्धि में प्रवृत्त हो रहे हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र इस विभीषिका से त्रस्त है और संशय के धरातल पर खड़ा है। वर्तमान शताब्दी एवं भविष्य के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

शिक्षा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती है और हमारी दृष्टि को दिव्य बनाती है। शिक्षा ही एक ऐसा अनूठा माध्यम है, जिससे छात्र–जीवन में मूल्यों की स्थापना की जा सकती है। यह शिक्षा का बुनियादी दायित्व है कि वह जीवन को त्रिकालसम्मत मूल्यों पर आधारित करे और ऐसी शक्तियों पर अंकुश लगाए, जो इन शाश्वत व चिरन्तन मूल्यों का ह्रास करती हैं। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है– छात्र का चारित्रिक विकास। यह तभी सम्भव है, जब शिक्षा को नैतिकता से जोड़ा जाए। इसके लिए 'नैतिक मूल्य' आधारभूत सामग्री हैं। इससे जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों का विकास होगा तथा भौतिकवाद के भटकाव से समाज को बचाया जा सकेगा। साथ ही अनैतिक व अमानवीय प्रवृत्तियों पर अंकुश भी लग सकेगा, करुणा व दया के भाव प्रस्फुटित होंगे तथा मन की संवेदना का विस्तार होगा। नैतिक शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है, जो हमारे जीवन को प्रशस्त बनाती है और हमें संस्कृति से जोड़े रखती है। शिक्षा में नैतिकता का समावेश होने पर ही समाज में व्याप्त चारित्रिक पतन से मुक्ति मिल सकती है।

नैतिक शिक्षा का परीक्षण पुस्तकों में न रहकर जीवन के आचरण में होता है। इन जीवन मूल्यों को धारण करने का उपयुक्त समय विद्यार्थी जीवन ही है। इसी को ध्यान में रखते हुए नैतिक शिक्षा पर आधारित विषयों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। नैतिकता मानवता की साँझी धरोहर है। नैतिक शिक्षा में विश्व का सारा चिन्तन व दर्शन समाया हुआ है। इसका सीधा सम्बन्ध व्यवहार दर्शन से है। नैतिकता का निवास शब्दों में कम और व्यवहार में अधिक होता है। सच्चे आचरण से जुड़ी नैतिक शिक्षा छद्म नहीं सिखाती है। इस पुस्तक में सूक्तियों, प्रेरक प्रसंगों आदि के माध्यम से नैतिक शिक्षा को व्यावहारिक जीवन में आकार देने का प्रयास किया गया है, जिससे हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की परम्पराएँ कायम रहेंगी और निरन्तरता व बदलाव को भी गति मिलेगी।

आशा है इस पुस्तक में आए उच्च नैतिक मूल्य विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हुए नेतृत्व एवं अनुयायित्व की प्रवृत्तियों का विकास कर सकेंगे। साथ ही भारत की सार्वभौमिक सांस्कृतिक धरोहर को उन तक पहुँचा सकेंगे। इसे पढ़कर वे देशभक्त, संस्कारी व प्रतिभाशाली बनेंगे। हम उन सभी लेखकों व सुधीजनों के आभारी हैं, जिन्होंने अमूल्य योगदान देकर इस पुस्तक को अपनी रचनाओं से सुशोभित किया है। सुधी पाठकों के विचार अवश्य ही इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करेंगे।

केशनी आनन्द अरोड़ा
अतिरिक्त मुख्य सचिव, विद्यालय शिक्षा
हरियाणा, चण्डीगढ

आभार

वर्तमान युग में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ रही है, शिक्षा का प्रसार भी खूब हो रहा है, किन्तु इसके बावजूद समाज में बढ़ता अनाचार, परिवारों का टूटना, अपनों के ही द्वारा किए जाने वाले दुष्कर्म नैतिकता के पतन की कहानी कह रहे हैं। इस दृष्टि से यह परम आवश्यक हो जाता है कि हमारी शिक्षा मात्र रोजगारोन्मुखी व भौतिक प्रगति प्रगति करने वाली न हो अपितु नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाने वाली भी हो। भौतिक प्रगति का महत्त्व निश्चित ही है, किन्तु मानवीय गुणों के विकास बिना वह व्यर्थ है, सर्वांगपूर्ण न होकर एकांगी मात्र है। अतः आज बालकों को शिक्षा के साथ–साथ मानवता का संस्कार देने के लिए नैतिक शिक्षा विषय को विद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना अपेक्षित है।

ऐसा करते वक्त हमारे सामने भारतीय नैतिक मूल्यों की उज्ज्वल परम्परा है, जिसमें राम पिता की आज्ञा के लिए राजपद त्यागकर वनवास को जाते हैं, महाराणा प्रताप देश रक्षा के लिए परिवार सहित घास की रोटी खाने को विवश होते हैं तो कितने ही शहीद भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव की तरह अपने प्राण न्यौछावर कर देते हैं। यदि बालकों को प्रारम्भ से ही नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाया जाता है तो वे न सिर्फ उन मूल्यों से परिचित होंगे अपितु भारतीय मूल्य परम्परा के वाहक भी बनेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

भारतीय संस्कृति की परम्परा अत्यन्त समृद्ध रही है। जिस समय अधिकांश भूमण्डल पर अज्ञान का अँधेरा फैला था, उस समय भारतीय ऋषि मुनियों द्वारा वेद–उपनिषद् आदि की रचना कर नैतिक मूल्यों व मानवता की संस्थापना की गई। हम अपनी उस सम्पन्न परम्परा के ऋणी हैं, जो आज भी हमारा पथ आलोकित कर रही है। नैतिक शिक्षा विषयक पुस्तक लेखन के प्रेरणास्वरूप श्री दीनानाथ बत्रा, अध्यक्ष शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास द्वारा यदि पहल न की जाती तो हम तक इस रूप में ये पुस्तकें न आ पाती, उनके प्रति यह विभाग कृतज्ञता व्यक्त करता है।

मानवता के प्रबल समर्थक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के प्रबुद्ध शिष्य व मानव मूल्य विश्वकोश के प्रधान सम्पादक डॉ. धर्मपाल मैनी के प्रति यह विभाग आभार व्यक्त करता है, जिनकी बनाई पगडण्डी पर आगे बढ़ने का हम साहस कर सके हैं। इसी कड़ी में मार्गदर्शन के लिए प्रो. श्रीधर वासिष्ठ, प्रो. तेजपाल शर्मा व डॉ. चाँद किरण सलूजा का नामोल्लेख करना पुनीत कर्तव्य समझते हैं। इस पुस्तक लेखन के लिए किए गए प्रयास हेतु एस.सी.ई.आर.टी. की सम्पूर्ण पुस्तक निर्माण समिति के प्रति भी विभाग आभार व्यक्त करता है।

हमारे प्रयासों के बावजूद यदि किसी रचनाकार अथवा संस्था का नाम छूट गया हो तो उसके प्रति भी हम आभार प्रकट करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। पुस्तक के टंकण कार्य के लिए महक सिंह तथा चित्रांकन व साज सज्जा के लिए ललित कुमार मौर्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के प्रति भी विभाग आभारी है।

एम. एल. कौशिक,
निदेशक
माध्यमिक शिक्षा हरियाणा
पंचकूला

पुस्तक निर्माण समिति

संरक्षक मण्डल :

केशनी आनन्द अरोड़ा, आई.ए.एस. अतिरिक्त मुख्य सचिव, विद्यालय शिक्षा, हरियाणा, चण्डीगढ़

एम. एल. कौशिक, आई.ए.एस. निदेशक माध्यमिक शिक्षा, हरियाणा, पंचकूला

धीरेन्द्र खड़गटा, आई.ए.एस. सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

मार्गदर्शन :

स्नेहलता अहलावत, निदेशक, रा .शै. अनु. एवं प्रशि. परिषद, हरियाणा, गुड़गाँव

डॉ. किरणमयी, संयुक्त निदेशक, रा .शै. अनु. एवं प्रशि. परिषद, हरियाणा, गुड़गाँव

रवीन्द्र फोगाट, अध्यक्ष पाठ्य पुस्तक विभाग, रा .शै. अनु. एवं प्रशि. परिषद, हरियाणा, गुड़गाँव

परामर्श :

प्रो. रामसजन पाण्डेय, हिन्दी विभागाध्यक्ष, इन्दिरा गाँधी विश्वविद्यालय, मीरपुर

डॉ. नन्दलाल महता, से. नि. हिन्दी विभागाध्यक्ष, राजकीय महाविद्यालय, गुड़गाँव

डॉ. मोहनलाल सर, से. नि. रीडर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

डॉ. सुशील त्यागी, से. नि. प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, अटेली

डॉ. मोहम्मद हनीफ खान, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

सम्पादन :

डॉ. योगेश वासिष्ठ, विषय विशेषज्ञ, रा .शै. अनु. एवं प्रशि. परिषद, हरियाणा, गुड़गाँव

डॉ. अश्विनी वासिष्ठ, विषय विशेषज्ञ, रा .शै. अनु. एवं प्रशि. परिषद, हरियाणा, गुड़गाँव

लेखन समिति :

डॉ. सविता, प्राध्यापिका, रा.क.व.मा.वि.मनाना, पानीपत

कृष्णलता यादव, से.नि. प्राध्यापिका, रा.व.मा.वि.फरूखनगर, गुड़गाँव

डॉ. देवेन्द्र स्वामी, प्राध्यापक रा.व.मा.वि. दीघौट, पलवल

सुमित्रा, प्राध्यापिका क.गाँ.बा.वि. नूँह, मेवात

डॉ. सुरेश, प्राध्यापक रा.व.मा.वि. कालीरावण, हिसार

डॉ. सुरेन्द्र, प्राध्यापक डाइट इक्कस, जींद

मिथिलेश शास्त्री, प्राध्यापक रा.व.मा.वि. चौधरीवास, हिसार

सोमप्रकाश, बी.आर.पी. कैथल

विषय सूची

क्रमांक	पाठ का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	ईश–वन्दना	1
2.	जीवन को दे नया आयाम : प्राणायाम	2
3.	संगति की सूक्तियाँ	6
4.	प्रेरक प्रसंग	9
5.	ज्ञान सभी को चाहिए	11
6.	म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज	16
7.	गणित गौरव ब्रह्मगुप्त	19
8.	दिव्य चेतना पुरुष रामकृष्ण परमहंस	22
9.	मुस्लिम धर्म का उपवास पर्व : रमज़ान	26
10.	हौसलों की उड़ान	29
11.	गिरिधर की कुण्डलियाँ	32
12.	अभी समय है	34
13.	सद्व्यवहार	36
14.	पर्यावरण संरक्षण	40
15.	बोध कथाएँ	44
16.	माता का आदर्श	48
17.	काक और हंस	51

1 ईश–वन्दना

त्वं हि विश्वतोमुख! विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचद् अघम्।। (ऋग्वेद 1/97/6)

हे अग्रणी! हमारे, परमात्म रूप प्यारे!
सबके प्रमुख! तुम्हीं हो, सब ओर नेत्र धारे।

सब में तुम्हीं बसे हो, सब में तुम्हीं रमे हो;
मोहक छटा तुम्हारी, हम देख–देख हारे।

तुम देखते हो हमको, सुनते हो सब हमारी;
'प्रभु' हो तुम्हीं हमारे, 'परिभू' सभी से न्यारे।

जो कुछ करें तुम्हारा, जो कुछ धरें तुम्हारा;
तुमको तुम्हारा अर्पित, हम कर रहे हैं सारे।

हे पाप के विनाशक! सब पाप नष्ट कर दो;
आए शरण तुम्हारी, तुम ही हो बस सहारे।

– डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली

अभ्यास

1. 'मोहक छटा तुम्हारी' में प्रभु की किस छटा की बात की गई है?
2. 'तुम देखते हो हमको, सुनते हो सब हमारी,' में ईश्वर के प्रति भक्त का क्या भाव प्रकट होता है?
3. वन्दना की किस पंक्ति में सर्वस्व समर्पण का भाव निहित है?
4. ईश–वन्दना की कुछ पंक्तियाँ स्वयं बनाओ और साथियों के साथ गुनगुनाओ।
5. 'तुम ही हो बस हमारे,' पंक्ति में भक्त की एकनिष्ठ भक्ति का भाव प्रकट होता है–अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
6. अपनी मनपसन्द ईश–वन्दना कॉपी में लिखो।

2 जीवन को दे नया आयाम : प्राणायाम

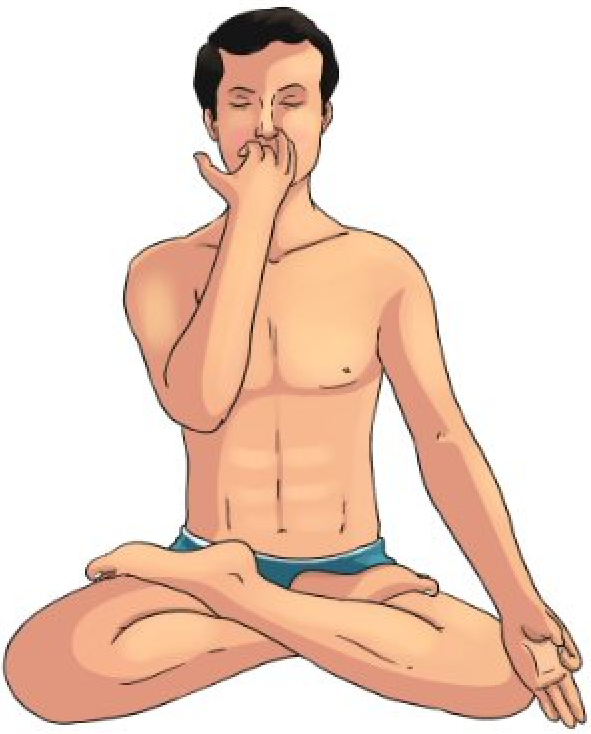

योग में इतनी शक्ति है कि वह व्यक्ति को जीवनपर्यन्त स्वस्थ और सेहतमन्द बनाए रख सकता है। अगर हम अपनी दिनचर्या में प्राणायाम को शामिल कर लें तो रोगों का हम पर कोई हमला ही न हो।

वर्तमान में योग एक बहुत प्रचलित शब्द है। योग का सम्बन्ध मनुष्य की चेतना और ब्रह्माण्डीय चेतना के मिलन से है। शरीर के आन्तरिक विकारों को दूर कर मन एवं चित्त को स्थिर करने के लिए विकसित यौगिक प्रक्रिया ही योग कहलाती है। योग अन्तःकरण को शुद्ध कर असीम आनन्द प्रदान करता है। योग के कुल आठ अंग हैं, इसी कारण इसे अष्टांग योग कहा जाता है। इसका तीसरा और चौथा अंग क्रमशः आसन और प्राणायाम होते हैं, जिनसे हम अच्छी तरह परिचित हैं। अगर हम प्राणायाम के लिए 20–25 मिनट और अपनी ज़रूरत के अनुसार कुछ आसनों के लिए 10–15 मिनट समय निकाल लें तो स्वस्थ जीवन जीना हमारा स्वप्न नहीं अपितु यथार्थ बन जाए।

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है– प्राण और आयाम। प्राण अर्थात् जीवन शक्ति और आयाम अर्थात् नियमन। इस प्रकार प्राणायाम का तात्पर्य हुआ जीवन शक्ति का नियमन। निरन्तर अभ्यास के द्वारा साँस पर नियन्त्रण करके जीवन शक्ति को बढ़ाना ही प्राणायाम है। महर्षि पतंजलि ने कहा है–

श्वासप्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः (यो.सू. 2/49)

यानी प्राण की स्वाभाविक गति श्वास–प्रश्वास को रोकना प्राणायाम है। इड़ा, पिंगला आदि नाड़ियों का व्यवहार नियमित करना और उनमें नियमित गति उत्पन्न कर प्राण शक्ति को उत्प्रेरित, संचारित, नियन्त्रित व आनुपातिक करना प्राणायाम का महत् उद्देश्य है। प्राणायाम से सिद्ध हुई इड़ा और पिंगला की नियमित गति जब और भी सूक्ष्म हो जाती है तो हम मूलभूत शक्ति जिसे प्राण कहते हैं, को प्राप्त होते हैं। यह श्वास ली जाने वाली वायु मात्र नहीं है अपितु प्राण शक्ति

है। इस विश्व में जो कुछ विद्यमान है, वह सब प्राण के स्पन्दन का ही कार्य है। इसलिए प्राण की गति को नियमित कर शरीर शोधन व ज्ञानोदय दोनों सम्भव हैं। 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।' (योग दर्शन 2/52) अर्थात् ज्ञान को ढकने वाले अज्ञान का नाश होता है। प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी प्रभावित होती है, जिससे नाड़ी चक्रों में चेतना आती है और अनेक प्रकार की शक्तियाँ विकसित होती हैं। पिछली कक्षाओं में आपको कुछ योगासनों व प्राणायाम की जानकारी दी जा चुकी है, जिन्हें आपने जीवनचर्या का हिस्सा बनाया होगा।

आपको पुनः स्मरण करवाना उचित जान पड़ता है कि शरीर की शुद्धि के लिए जिस प्रकार स्नान की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मन की शुद्धि के लिए प्राणायाम की। प्राणायाम से हम स्वस्थ और नीरोग होते हैं, दीर्घायु प्राप्त करते हैं, हमारी स्मरण शक्ति बढ़ती है और मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे हमारे आमाशय, लिवर, किडनी, छोटी–बड़ी आँतें तथा पाचन संस्थान के सभी अंग प्रभावित होते हैं और कार्यकुशल बनते हैं। इससे नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, स्नायुमण्डल को शक्ति मिलती है, मन की चंचलता दूर होती है, मन एकाग्र होता है और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। मनु का कहना है– जैसे अग्नि से धौंके हुए स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।

पंच प्राण

यद्यपि प्राण एक है, मानव शरीर में स्थान और क्रिया भेद के आधार पर इसे पाँच उपभागों में विभाजित किया जा सकता है। इन पाँचों उपविभागों को सामूहिक रूप से पंच प्राण कहा जाता है। ये निम्नलिखित हैं :

1. प्राण : यह कण्ठ से हृदय तक व्याप्त है। यह प्राण शक्ति साँस को नीचे खींचने में सहायक होती है।

2. अपान : यह मूलाधार चक्र के पास स्थित है। यह वायु बड़ी आँत को बल देती है और मल–मूत्र के निष्कासन में सहायक होती है।

3. समान : नाभि से हृदय तक रहने वाली वायु को समान कहते हैं। यह प्राण शक्ति पाचन संस्थान तथा उनसे निकलने वाले रसों को उत्प्रेरित तथा नियन्त्रित करती है।

4. उदान : कण्ठ से मस्तिष्क तक रहने वाली वायु को उदान कहते हैं। इस प्राण शक्ति द्वारा कण्ठ से ऊपर के अंगों, आँख, कान, नाक, मस्तिष्क आदि का नियन्त्रण होता है। इसके अभाव में हमारा मस्तिष्क ठीक से काम नहीं कर सकेगा और बाह्य जगत के प्रति हमारी चेतना नष्ट हो जाएगी।

5. व्यान : यह वह प्राण शक्ति है, जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इसका मुख्य स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है। यह शरीर की अन्य शक्तियों व प्राण वायु में सहयोग करती है और सारे शरीर की गतिविधियों का नियमन व नियन्त्रण करती है।

हम नाक के बाएँ और दाएँ छिद्रों द्वारा श्वास–प्रश्वास की क्रियाएँ करते हैं। दाहिने नथुने का प्राण प्रवाह सूर्य नाड़ी द्वारा व बाएँ नथुने का प्राण प्रवाह चन्द्र नाड़ी द्वारा होता है। ये दोनों प्राण प्रवाह मिलकर जो तीसरा प्राण प्रवाह बनता है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं।

प्राणायाम में श्वास की तीन क्रियाएँ की जाती हैं–

1. पूरक अर्थात् श्वास को अन्दर लेना
2. रेचक अर्थात् श्वास को बाहर निकालना तथा
3. कुम्भक अर्थात् श्वास को अन्दर या बाहर रोकना। अन्दर श्वास भरकर रोकना आन्तरिक कुम्भक व श्वास बाहर निकालकर रोकना बाह्य कुम्भक कहलाता है।

इस दौरान लगने वाले तीन बन्धों को भी जानना आवश्यक है :

1. जालन्धर बन्ध : ठोड़ी को हृदय से चार अंगुल ऊपर कण्ठकूप में दबाने से लगता है।
2. उड्डियान बन्ध : श्वास को बाहर निकालकर पेट को खींचने से लगता है।
3. मूल बन्ध : गुदा को ऊपर की ओर खींचकर सिकोड़ने से लगता है।

आवश्यक बातें : प्राणायाम करते समय शरीर के किसी भी हिस्से में तनाव नहीं रहना चाहिए। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञान मुद्रा की स्थिति में रखने चाहिए। इसे प्रारम्भ करने से पूर्व थोड़ी देर श्वास को स्वाभाविक रूप से लेकर सम व शान्त करें। शरीर को ढीला कर लें व चारों ओर से विचारों को हटाकर मन को एकाग्र कर लें। इसे शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार ही करना चाहिए। अधिक तथा अनियमित रूप से नहीं। प्रातःकाल खाली पेट प्राणायाम करना अधिक उपयुक्त व लाभप्रद है। इसे करते वक्त ऋतु का ध्यान रखें, जैसे गर्मियों में भस्त्रिका, सूर्य भेदन का अभ्यास न करें तथा सर्दियों में शीतली व शीतकारी प्राणायामों का अभ्यास न करें।

यदि निम्नलिखित दो प्राणायामों को आपने अभी प्रारम्भ नहीं किया है तो आओ इनके बारे में भी जानकर इन्हें अपने योगाभ्यास का हिस्सा बनाएँ :

1. **कपालभाति प्राणायाम** : कपाल अर्थात् मस्तिष्क का अग्र भाग और भाति अर्थात् तेज। कपालभाति प्राणायाम लगातार करने से चेहरे का लावण्य बढ़ता है। इसके लिए सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में बैठें। इसमें सिर्फ साँस को बाहर निकालते रहना है। साँस को बाहर निकालते समय पेट को अन्दर की तरफ संकुचित करें। इस प्राणायाम में कोशिश करके साँस अन्दर न लें। केवल रेचक को जोर लगाकर करें। दो साँसों के बीच साँस अपने आप अन्दर चली जाएगी। यह प्राणायाम पहले 15–20 बार करें, फिर शक्ति के अनुसार अभ्यास बढ़ाएँ। जितनी बार भी कपालभाति करें, अन्त में बाह्य कुम्भक करते हुए मूल, उड्डियान और जालन्धर बन्ध कुछ क्षण के लिए लगा सकते हैं। बाद में बन्धों को हटाते हुए श्वास को स्वाभाविक स्थिति में लाएँ।

कपालभाति के लाभ :

- कपालभाति प्राणायाम से रक्त संचरण बढ़ता है व शरीर की बढ़ी चर्बी घटती है।
- थॉयराइड की समस्या खत्म हो जाती है।
- सम्पूर्ण पाचन तन्त्र स्वस्थ होता है।
- बालों तथा त्वचा की कोई समस्या हो तो वह समाप्त हो जाती है।

- डायबिटीज, कोलेस्ट्रॉल एवं एलर्जी की समस्या समाप्त होती है।
- शरीर में स्वतः कैल्शियम और हीमोग्लोबिन बनने लगता है।
- आँख और दाँत की सभी समस्याएँ समाप्त होती हैं और किडनी भी साफ होती है।
- मूलाधार चक्र जाग्रत होता है।

2. **सूर्य भेदन प्राणायाम** : पद्मासन में बैठकर दाएँ हाथ की दो अंगुलियों को भ्रूमध्य में रखें व तीसरी अंगुली से बाईं नासिका को बन्द कर लें। फिर दाईं नासिका से जल्दी से गहरी लम्बी श्वास लें। अंगूठे से दाईं नासिका भी बन्द कर लें और आन्तरिक कुम्भक करें। तीनों बन्ध भी लगाएँ। पहले उड्डियान, फिर जालन्धर और मूलबन्ध खोलकर दाईं नासिका से जल्दी से जोर लगाते हुए श्वास को बाहर निकाल दें। इस प्राणायाम की विशेषता यह है कि केवल दाहिने नासारन्ध्र से ही श्वास–प्रश्वास की क्रिया की जाती है। आन्तरिक कुम्भक का अभ्यास बढ़ाएँ। इस प्राणायाम में ध्यान का केन्द्र नाभि चक्र रहेगा।

सूर्य भेदन के लाभ :

- यह शरीर में ताप पैदा करता है और रक्त का शोधन करता है।
- रक्त में लाल कणिकाओं को बढ़ाता है।
- मन को स्वस्थ करता है।
- पेट और आँतों के रोग दूर होते हैं।
- नियमित अभ्यास कुष्ठ रोग में लाभदायक है।
- पिंगला नाड़ी का भेदन कर मस्तिष्क की शक्ति को जाग्रत करता है।

अभ्यास

1. प्राणायाम से क्या अभिप्राय है?
2. योग के अन्तर्गत आसन व प्राणायाम का क्या स्थान है?
3. यौगिक क्रियाएँ हमें किस प्रकार असीम आनन्द प्रदान करती हैं?
4. प्राणायाम करते समय किन सावधानियों की आवश्यकता है?
5. आन्तरिक व बाह्य कुम्भक में क्या अन्तर है?
6. कपालभाति प्राणायाम की प्रक्रिया व इसके लाभ बताइए।
7. सूर्य भेदन प्राणायाम मन व शरीर के लिए किस प्रकार लाभदायक है?
8. आप किस समय तथा कौन सी योग क्रियाएँ करते हैं? इस दौरान आपको कैसा अनुभव होता है?
9. प्राणायाम के लाभ सम्बन्ध में एक चार्ट बनाओ।
10. योग के प्रचार व प्रसार में लगी संस्थाओं व व्यक्तियों के बारे में जानकारी एकत्रित कीजिए।

3 संगति की सूक्तियाँ

1. देवो देवेभिरागमत्। ऋग्वेद 1/1/5
भाव : परमेश्वर विद्वानों की संगति से प्राप्त होता है।

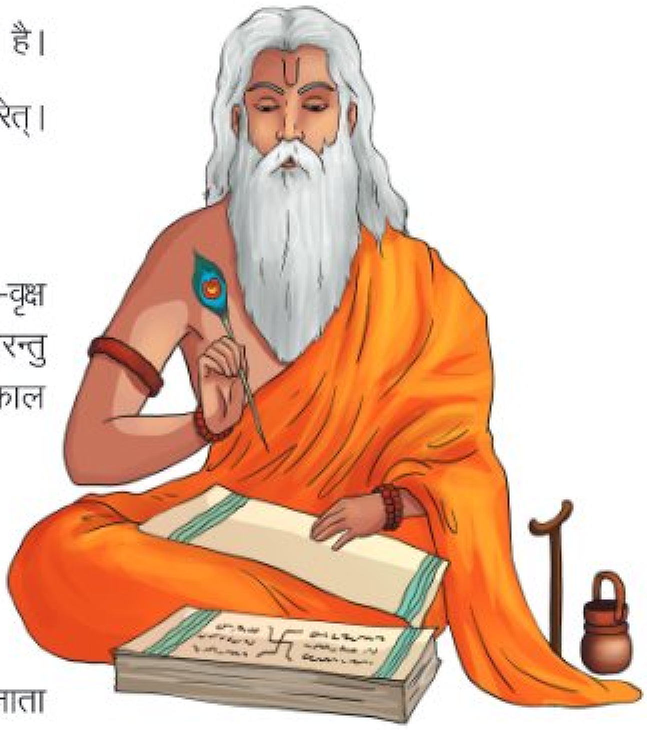

2. गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः।
गर्ग संहिता (62/9)

भाव : गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्प–वृक्ष दीनता के अभिशाप का अपहरण करता है, परन्तु सत्संग, पाप, ताप और दैन्य तीनों का तत्काल नाश कर देता है।

3. रत्नं रत्नेन संगच्छते। मृच्छकटिक 1/32
भाव : रत्न रत्न के साथ जाता है।

4. क्षीराश्रितमुदकं क्षीरमेव भवति। चाणक्य नीति
भाव : दूध का आश्रय लेने वाला पानी दूध हो जाता है।

5. सत्संगः स्वर्गवासः। चाणक्य नीति (519)
भाव : सज्जनों का संग स्वर्ग में वास के समान है।

6. सत्संगति कथय किन्न करोति पुंसाम्। नीतिशतक–23

भाव : सत्संगति मनुष्य की बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य का संचार करती है, सभी दिशाओं में सम्मान व उन्नति को बढ़ाती है, पाप से दूर करती है तथा हृदय को प्रसन्न रखती है। कहिए सत्संगति मानव का क्या नहीं करती अर्थात् सब कुछ करती है।

7. सद्भिरेव सहासीत, सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवाहं मैत्रीं च, नासद्भिः किंचिदाचरेत्।।
भाव : सज्जनों के साथ ही बैठना चाहिए। सदाचारी के साथ ही विवाह एवं मित्रता करनी चाहिए। दुर्जनों के साथ इनमें से कोई भी आचरण नहीं करना चाहिए।

8. सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति। उत्तररामचरित (भवभूति)

भाव : सत्संग में होने वाला मरण भी मनुष्य का उद्धार कर देता है।

9. वासो न संगः कैर्विधेयो मूर्खैश्च खलैश्च पापैः।।। शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी

भाव : किनके साथ निवास और संग नहीं करना चाहिए?– मूर्खों, नीचों, दुष्टों और पापियों के साथ।

10. यादिसं कुरुते मित्तं यादिसं चूपसेवति।

सोपि तादिसको होति सहवासो हि तादिसो।। सतिगुम्ब जातक

भाव : जो जैसे आदमी से मित्रता करता है, जैसे आदमी की संगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है क्योंकि उसकी संगति ही वैसी है।

11. दोष गुण वि हवन्ति संसग्गिए। पउमचरिउ (स्वयम्भूदेव)

भाव : अच्छे संसर्ग में रहने से ही दोष गुणों में परिवर्तित होते हैं।

12. कबिरा संगत साध की, ज्यों गन्धी की बास।

जो गन्धी कछु दे नहीं, तो भी बास सुवास।। कबीरदास

13. सीप गयो मोती भयो कदली भयो कपूर

अहिमुख गयो तो विष भयो संगत के फल सूर। सूरदास

14. सठ सुधरहि सत्संगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई। रामचरितमानस (तुलसीदास)

15. पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानि। कृष्ण गीतावली (तुलसीदास)

अर्थात् निषिद्ध लकड़ी (बबूल, बहेड़ा) भी अग्नि में पड़ने पर अग्निरूप ही हो जाती हैं, यह सम्पूर्ण जगत जानता है।

16. रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।

सब ही जानत बढ़त है, बृच्छ बराबर बेल। वृन्द

17. जिहिं प्रसंग दूषन लगै, तजिये ताको साथ।

मदिरा मानत है जगत, दूध कलारी हाथ।। वृन्द

अर्थात् जिसके साथ बैठने से दोष लगता हो, उसका साथ छोड़ देना चाहिए। कलारी के हाथ के दूध को भी दुनिया मदिरा मान लेती है।

18. रहिमन नीच प्रसंग ते, नितप्रति लाभ विकार।

नीर चौरावे सम्पुटी, मारि सहै धरि आर।। रहीम

19. जो साधुन सरणी परे तिनके कवन विचार

दन्त जीभ जिमि राखि है, दुष्ट अरिष्ट संहार। गुरु गोविन्द सिंह कृत विचित्र नाटक (13/25)

अर्थात् जो लोग श्रेष्ठ लोगों की शरण लेते हैं, उनकी क्या चिन्ता करनी? जैसे दाँतों से घिरी जीभ भी सुरक्षित रहती है, उसी प्रकार गुरुभक्त लोग भी दुष्टों और दुर्भाग्य से सुरक्षित रहते हैं।

20. जो जैसी संगति करता है, वो वैसा फल पाता है। महात्मा गाँधी

21. मुझे बताइए, आपके संगी साथी कौन हैं? और मैं बता दूँगा–आप कौन हैं। गेटे

22. बदमाशों की संगति ने मेरा नाश कर डाला। शेक्सपीयर

23. ख्वाहि की वेदानी ब यकीं दोजखरा।
दोजख बजहां सोहबते ना अहल बुवद। उमर खैयाम
अर्थात् यदि तुम चाहते हो कि तुम निश्चित रूप से जानो कि नरक क्या है तो जान लो कि अज्ञानी व्यक्ति की संगति ही नरक है।

24. मूढ़ों की संगति में ज्ञानी ऐसा है, जैसे अन्धों के साथ लावण्यमयी। शेखसादी

25. संगति करती है असर यह जाने सब कोय।
जाते हैं सब बाग में बाग–बाग दिल होय।। रसिकेश

अभ्यास

1. विद्वानों की संगति परमेश्वर–प्राप्ति में कैसे सहायक होती है?
2. पाप, ताप, दीनता आदि विकारों का नाश किससे होता है?
3. दूध में पानी मिलाने पर, पानी का दूध बन जाने का क्या अर्थ है?
4. सत्संगति मनुष्य के व्यक्तित्व का परिष्कार करती है। कैसे?
5. पाठ में किस प्रकार के लोगों से दूर रहने का सुझाव दिया गया है?
6. उमर खैयाम ने अज्ञानी व्यक्ति की संगति को नरक क्यों कहा है?
7. कबीर ने साधु की संगति और गन्धी की बास (गन्ध) में क्या समानता बताई है?
8. रहीम के अनुसार निम्न प्रकृति का व्यक्ति अपने साथी को किस प्रकार संकट में डालता है?
9. अपने अनुभव के आधार पर सत्संगति के लाभ व कुसंगति की हानियाँ बताओ।
10. सत्संगति से मूर्ख भी सुधर जाते हैं, दैनिक जीवन से उदाहरण देकर पुष्टि करो।
11. आप अपने संगी–साथियों की किन चारित्रिक विशेषताओं से प्रभावित हैं? सहपाठियों से चर्चा करो।
12. सत्संगति के लाभ को प्रदर्शित करने वाले पाँच नारे लिखो।
13. सत्संगति सम्बन्धी कोई पाँच दोहे एकत्र करो।

4 प्रेरक प्रसंग

1. माँ से बढ़कर कोई नहीं

स्वामी विवेकानन्द जी से एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया, माँ की महिमा संसार में किस कारण से गाई जाती है? स्वामी जी मुस्कराए और उस व्यक्ति से बोले, दो सेर वजन का एक पत्थर ले आओ। जब वह व्यक्ति पत्थर ले आया तो स्वामी जी ने उससे कहा, इस पत्थर को किसी कपड़े में लपेटकर अपने पेट पर बाँध लो और चौबीस घण्टे बाद मेरे पास आओ तो मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगा।

स्वामी जी के आदेशानुसार उस व्यक्ति ने पत्थर को अपने पेट पर बाँध लिया और चला गया। पत्थर बाँधे हुए दिनभर वह अपना काम करता रहा, किन्तु हर क्षण उसे परेशानी और थकान महसूस हुई। शाम होते–होते पत्थर का बोझ सँभाले हुए चलना–फिरना उसके लिए असह्य हो उठा। थका–माँदा वह स्वामी जी के पास पहुँचा और बोला, मैं इस पत्थर को अब और अधिक देर तक बाँधे नहीं रख सकूँगा। एक प्रश्न का उत्तर पाने के लिए मैं इतनी कड़ी सजा सहन नहीं कर सकता। स्वामी जी मुस्कराते हुए बोले, ''पेट पर इस पत्थर का बोझ तुमसे कुछ घण्टे भी

नहीं उठाया गया। माँ अपने गर्भ में पलने वाले शिशु को पूरे नौ माह तक ढोती है और गृहस्थी का सारा काम भी करती है। संसार में माँ के सिवाय कोई इतना धैर्यवान और सहनशील नहीं है इसलिए माँ से बढ़कर इस संसार में कोई और नहीं।

2. शराब से मुक्ति

कुसंगति के कारण शराब पीने की बुरी आदत में फँसा हुआ एक युवक, भूदान आन्दोलन के प्रणेता, विनोबा भावे के पास आया। उसने उनसे प्रार्थना की कि मैं बेहद परेशान हूँ। मदिरा मेरा पीछा नहीं छोड़ती। विनोबा जी ने सुना और उससे अगले दिन आने को कहा। अगले दिन युवक आया और विनोबा जी को आवाज देने लगा। युवक की आवाज सुनकर विनोबा जी ने कहा कि मैं बाहर नहीं आ सकता क्योंकि मुझे एक खम्भे ने पकड़ रखा है। युवक ने भीतर देखा कि विनोबा जी ने एक खम्भे को पकड़ रखा है। यह देखकर युवक बोला कि आप स्वयं खम्भे को छोड़ दें तो आप खम्भे से अलग हो जाएँगे। यह सुनकर विनोबा जी बोले, बेटा, मैं तुम्हें यही समझाना चाहता था कि मदिरा ने तुम्हें नहीं पकड़ रखा; तुमने मदिरा को पकड़ रखा है। तुम स्वयं ही शराब को छोड़ सकते हो। दृढ़ इच्छाशक्ति से तुम गलत आदतों को छोड़ सकते हो। युवक विनोबा जी की शिक्षा से प्रभावित हुआ और मदिरा त्याग का वादा कर खुशी–खुशी घर चला गया।

अभ्यास

1. जिज्ञासु ने स्वामी विवेकानन्द जी से क्या प्रश्न किया व उन्होंने उसे क्या करने को कहा?
2. जिज्ञासु पत्थर को अपने पेट पर अधिक समय तक क्यों नहीं बाँधे रख सका?
3. आपके अनुसार माँ की महिमा संसार में किस कारण से गाई जाती है?
4. विनोबा जी के पास आने वाला युवक परेशान क्यों था?
5. विनोबा भावे जी खम्भा पकड़ने की घटना के माध्यम से युवक को क्या समझाना चाहते थे?
6. गलत आदतों से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है?
7. अपना एक ऐसा अनुभव बताओ, जिसमें आपके किसी अच्छे कार्य से माँ को खुशी मिली हो।
8. अपना कोई अनुभव बताओ, जब आपको कोई गलत आदत पड़ गई हो। इस आदत से आपने कैसे मुक्ति पाई?
9. 'युवा–वर्ग और नशा' विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
10. मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव आदि विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
11. कक्षा–कक्ष / विद्यालय प्रांगण में मातृ दिवस पर भाषण, कविता वाचन आदि प्रतियोगिता का आयोजन किया जाए।
12. दृढ़ इच्छाशक्ति से गलत आदत को छोड़ा जा सकता है, इस विषय पर अपने विचार लिखो।
13. अपने विद्यालय के पुस्तकालय से चरित्र निर्माण सम्बन्धी गीतों/कहानियों का संकलन करो।

5 ज्ञान सभी को चाहिए

गीता उपनिषदों का भी उपनिषद है क्योंकि सभी उपनिषदों को दुहकर यह गीतारूपी दूध श्रीकृष्ण ने अर्जुन के निमित्त संसार को दिया है। विनोबा भावे कहते हैं कि मेरा शरीर माँ के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं अधिक मेरा हृदय और बुद्धि दोनों गीता के दूध से पोषित हुए हैं। हम सभी जानते हैं कि कर्मफलत्याग गीता का केन्द्रीय बिन्दु है। पर निष्कामता, कर्मफलत्याग कहने भर से नहीं आ जाती। यह त्याग–शक्ति पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। गीता में ज्ञान के सम्बन्ध में कहा गया है–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। गीता 5/38

इस ज्ञान की तलाश में मनुष्य आदिकाल से ही रहा है। यह आवश्यक नहीं कि यह ज्ञान हमें बड़ों से ही प्राप्त हो। यदि हमें अपने छोटों से भी ज्ञान मिले तो उसे प्राप्त करने में संकोच नहीं करना चाहिए। ऐसी ही एक कथा है, जिसमें महाराजा जनक छोटे–से निःशक्त (दिव्यांग) बालक अष्टावक्र से ज्ञान प्राप्त करते हैं। कहानी इस प्रकार है :

आठ अंगों से मुड़ा–तुड़ा पैदा होने के कारण एक बालक का नाम अष्टावक्र रखा गया। उसको माता से संस्कार मिले और पिता से सदाचार की शिक्षा। निरन्तर ज्ञान–साधना में जुटा रहने वाला अष्टावक्र निर्भीक हो गया। शारीरिक कमियों ने उसको कभी चिन्तित नहीं किया। वह जान चुका था कि शरीर आत्मा के वस्त्र की तरह है। जिस प्रकार फटे–पुराने वस्त्र, मनुष्य को आगे बढ़ने से नहीं रोक सकते, उसी प्रकार शारीरिक कमियाँ भी बाधक नहीं बन सकतीं।

एक बार राजा जनक ने घोषणा करवाई– जो विद्वान महाराज को ज्ञानोपदेश देकर सन्तुष्ट कर देगा, उसे आधा राज्य और बहुत–सा धन दिया जाएगा; यदि ज्ञानोपदेश सन्तोषजनक नहीं हुआ तो उसे कारागार में डाल दिया जाएगा। अष्टावक्र के पिता भी जनक के सभागार में गए, परन्तु सन्तोषजनक ज्ञानोपदेश न दे पाने के कारण कारागार में डाल दिए गए।

अपनी माता से पूरा घटनाक्रम सुनकर किशोर अष्टावक्र ने निश्चय किया कि वह अपने ज्ञान के बल पर अपने पिता सहित अन्य विद्वानों को भी कारागार से मुक्त कराएगा। अष्टावक्र जब जनक की सभा में पहुँचा तो सभी सभासद हँस पड़े। अष्टावक्र घबराने वाला नहीं था। सबकी ओर देखकर वह भी ठहाके लगाने लगा।

राजा जनक ने पूछा, 'आप क्यों हँस रहे हैं?

अष्टावक्र बोला, 'पहले आप बताइए, आप सब क्यों हँसे थे?

जनक ने उत्तर दिया, 'सभी सभासद आपकी शारीरिक अवस्था को देखकर हँसे थे, जो कि उचित नहीं था। क्षमा कीजिए।'

अष्टावक्र ने कहा, ''राजन्! मैं आपकी सभा को विद्वानों की सभा मानकर यहाँ आया था लेकिन इनको हँसते हुए देखकर मुझे लगा कि मैं 'चर्मकारों की सभा' में आ पहुँचा हूँ। इसी विचार से मुझे हँसी आ गई। बुरा मत मानिएगा।''

किशोर की बात सुनकर सभासद स्तब्ध रह गए। सब के सब लज्जित थे और राजा जनक मौन थे। वे जानते थे कि शरीर नश्वर है। ज्ञान की चर्चा में शरीर के रूप–रंग का क्या काम? रूप–रंग या बनावट तो शरीर के धर्म हैं। आत्म ज्ञान से उनका क्या लेना–देना?

राजा जनक ने अष्टावक्र का स्वागत किया। अपने अन्तःपुर में ले जाकर उसकी खूब सेवा की। उसको स्वादिष्ट भोजन कराया। हालाँकि राजा के मन में 'चर्मकारों की सभा' वाली उक्ति खटक रही थी।

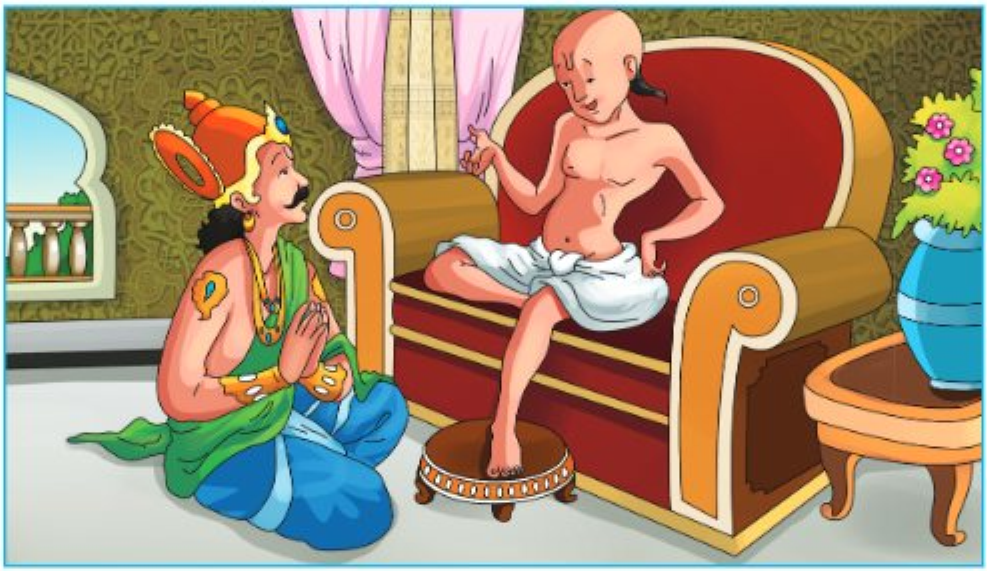

प्रातःकाल जनक उठे। नित्य–कर्म से निवृत्त होकर वे अष्टावक्र के पास गए और प्रणाम करके बोले, 'महात्मन्! मुझे ज्ञानोपदेश दीजिए। मैं आप के प्रति समर्पित हूँ।'

अष्टावक्र ने हँसकर कहा, ''राजन्! बिना दक्षिणा दिए ही आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं? जिस ज्ञान की प्राप्ति सुदीर्घ तप और ब्रह्मचर्य से होती है, उसे यूँ ही पाना चाहते हैं?''

विनीत भाव से जनक बोले, ''मेरे पास जो धन–सम्पदा, राज्य आदि है, वह सब आपको समर्पित करता हूँ। आप ज्ञानोपदेश दीजिए।''

अष्टावक्र ने कहा,''हे राजन्! अनित्य पदार्थों की सहायता से दिव्य ज्ञान पाना चाहते हैं? वैसे भी धन–सम्पदा और राज्य तो प्रजा के हैं। आपका उनमें कुछ भी तो नहीं है।''

जनक पुनः बोले, ''तो फिर मेरा शरीर ले लें।''

अष्टावक्र ने प्रत्युत्तर दिया, ''आप अपना शरीर कैसे दे सकते हैं? वह तो मन के अधीन है।''

सोच–विचारकर जनक बोले, ''आप मेरा मन ही ले लीजिए।''

अष्टावक्र ने कहा, ''मन तो लिया जा सकता है, अगर आपका मन शिवसंकल्प वाला हो। पहले आप कल्याणकारी संकल्प वाले बनिए।'' जनक वेद मन्त्र 'तन्मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु' के मर्म को समझ गए और बोले, ''मन आपका हो गया तो कल्याणकारी संकल्प वाला भी होगा ही। मुझे इस समर्पण से बहुत शान्ति मिल रही है।''

अष्टावक्र ने कहा, "आप कुछ समय इस शान्ति का अनुभव करें। आगे की बात बाद में करेंगे।"

कुछ समय बाद अष्टावक्र ने राजा को समझाया कि मन आत्मा के अधीन है। देह का अधिष्ठाता मन (देही) है, पर आत्मा विदेह है। मनुष्य मन को ज्ञान के अधीन कर देता है, तब वह आत्मोन्मुख हो जाता है। धीरे–धीरे जीव सच्चिदानन्द स्वरूप को प्रकट कर लेता है। जीव की यही परम गति है। शरीर पर ज्ञान की सत्ता स्थापित होने पर ही जीव का आत्मा से साक्षात्कार होगा।

अष्टावक्र ने पुनः कहा,"राजन्! आपने मुझे शिवसंकल्पयुक्त मन दिया था। उसे लौटा रहा हूँ। आप ज्ञानपूर्वक शासन करें और आत्मा का अनुभव करें।" जनक सन्तुष्ट होकर बोले, "मैं आपका आभारी हूँ। मुझे ज्ञान मिला; उसका प्रभाव भी अनुभव कर रहा हूँ। आप यहीं रहिए, मुझे सेवा का अवसर दीजिए।" हँसकर अष्टावक्र ने कहा,"अच्छा! अब ज्ञान पा लिया है तो मुझे भी अन्य विद्वानों की तरह कारागार में डालोगे?"

जनक ने विनीत भाव से कहा, "अज्ञान में मैंने उनको बन्दी बनाया था। अब उन सब विद्वानों को मुक्त कर देता हूँ। आपकी तरह वे सब अब स्वतन्त्र हैं। आप मेरा आभार तो स्वीकारें।"

अन्त में, अष्टावक्र सादर अपने पिता को लेकर चले गए।

वेद में कहा है – नास्ति ज्ञानाद् ऋते मुक्तिः। अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। मुक्ति दिलाने वाला यह ज्ञान सात्त्विक ही हो, जिसके विषय में गीता में कहा गया है :

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्। (गीता 18/20)

अर्थात् जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्–पृथक् सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मभाव को विभागरहित समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तो तू सात्त्विक जान।

अभ्यास

1. विनोबा भावे के गीता के सम्बन्ध में क्या विचार हैं?
2. ज्ञान का क्या महत्त्व है? इसे किस प्रकार पाया जा सकता है?
3. शारीरिक कमियों के विषय में अष्टावक्र के क्या विचार थे?
4. राजा जनक की सभा विद्वानों की सभा थी या नहीं? तर्क द्वारा स्पष्ट करो।
5. अष्टावक्र के निर्भीक होने का क्या कारण था?
6. आपके विचार से राजा जनक के सभासद लज्जित और मौन क्यों थे?
7. राजा जनक के मन में 'चर्मकारों की सभा' वाली उक्ति क्यों खटक रही थी?
8. 'शिवसंकल्पयुक्त मन' से क्या अभिप्राय है?
9. राजा जनक ने अनेक विद्वानों को बन्दी क्यों बनाया था व बाद में उन्हें क्यों मुक्त कर दिया?
10. नास्ति ज्ञानाद् ऋते मुक्तिः। इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट करो।
11. कल्पना करो, आपकी भेंट एक ज्ञानी से होती है। आप उनसे अपनी किन–किन जिज्ञासाओं का समाधान चाहोगे?
12. यदि आपने कभी ज्ञानार्जन सम्बन्धी कोई घटना पढ़ी, सुनी या अनुभव की हो तो उसे अपने शब्दों में लिखो।

गीता पाठ

दसवाँ अध्याय

गीता के दशम अध्याय का नाम 'विभूति योग' है। इस अध्याय में 42 श्लोक हैं, जिनमें भगवद्–विभूति, भक्तियोग एवं योग शक्तियों का वर्णन है। प्रथम श्लोक से लेकर सप्तम श्लोकपर्यन्त ईश्वर की विभूतियों और योग शक्तियों का वर्णन एवं उनके ज्ञान से होने वाले फलों का निरूपण किया गया है। 8वें श्लोक से 11वें श्लोकपर्यन्त भक्तियोग एवं भक्तियोग के प्रभाव का वर्णन किया गया है। 12–18वें श्लोकपर्यन्त अर्जुन के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति व उनके प्रभाव एवं योग–निवेदन तथा 19वें श्लोक से 42वें श्लोकपर्यन्त अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण के द्वारा अपनी योग–शक्तियों व विभूतियों का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण के स्वरूप ज्ञान का फल निरूपित करते हुए कहा है कि –

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।10/3।।

जो मुझे अजन्मा (जन्मरहित), अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर रूप से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। श्रीकृष्ण परम तत्त्व का परिचय कराते हैं कि जिसका कोई अन्त न होता हो, वह अनादि और अनन्त होता है। परमात्मा अनादि, अनन्त और अजन्मा है। इस बात को सब कोई नहीं जानते। कोई सम्यक् ज्ञानी व्यक्ति ही इस रहस्य को समझता है। परमात्मा को लोकमहेश्वर कहा गया है। उसे जानने वाला सब पापों से छूट जाता है। पाप से बचना सब चाहते हैं, परन्तु बचने का मार्ग नहीं जानते। पाप से बचने का मार्ग है– परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना।

ग्यारहवाँ अध्याय

गीता के ग्यारहवें अध्याय का नाम 'विश्वरूप दर्शन योग' है। इस अध्याय में 55 श्लोक हैं, जिसके पहले श्लोक से चौथे श्लोकपर्यन्त भगवान के विश्वरूप दर्शन करने की इच्छा से अर्जुन द्वारा निवेदन किया गया है। पाँचवें श्लोक से 8वें श्लोक तक श्रीकृष्ण के द्वारा अपने विश्वरूप का वर्णन है। 9वें श्लोक से 14वें श्लोकपर्यन्त संजय के द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति श्रीकृष्ण के विश्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। 15वें श्लोक से 31वें श्लोकपर्यन्त अर्जुन के द्वारा श्रीकृष्ण के विश्वरूप के दर्शनोपरान्त स्तुति का वर्णन है। 32वें श्लोक से 34वें श्लोक तक श्रीकृष्ण ने अपने

प्रभाव का वर्णन करते हुए अर्जुन को युद्ध के निमित्त उत्साहित किया है। 35वें श्लोक से 46वें श्लोकपर्यन्त भयभीत हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अपने चतुर्भुज रूप दर्शन देने की प्रार्थना की है। 47वें श्लोक से 50वें श्लोक तक श्रीकृष्ण के द्वारा 'विश्वरूप दर्शन' की महिमा का वर्णन एवं चतुर्भुज रूप दर्शन अर्जुन को कराने का वर्णन है। इस अध्याय में अनन्य भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए अनन्य भक्त की भगवत् स्वरूप प्राप्ति का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में है–

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।11/55।।

हे अर्जुन! जो पुरुष मेरे लिए यज्ञ, दान और तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाला है, मुझको ही परम तत्त्व मानकर व्यवहार करता है तथा मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम, गुण, प्रभाव, और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान का प्रेमभाव से अभ्यास करने वाला है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैरभाव से रहित है, ऐसी भक्ति वाला पुरुष ही मुझ को प्राप्त होता है। अपने कर्तव्य कर्मों को भगवान को समर्पित करना अनन्य भक्ति है। अनन्य भक्त सब कुछ भगवान को समझता है। वह यज्ञ, दान, तप आदि कर्म निष्काम भाव से तथा भगवान की प्रसन्नता के लिए करता है। प्रभु के विधान में आस्था रखता है। अपने इष्टदेव के नाम का श्रवण करता है, कीर्तन करता है। जो सुनता है, उसका मनन करता है। जब वह परमेश्वर का हो जाता है तो सब प्राणियों को निर्वैर होकर मित्र समझने लगता है।

बारहवाँ अध्याय

गीता के बारहवें अध्याय का नाम 'भक्ति योग' है। इस अध्याय में 20 श्लोक हैं, जिनमें साकार व निराकार स्वरूपों के उपासकों की श्रेष्ठता व भगवत्प्राप्ति करने वाले पुरुषों के लक्षणों का वर्णन है। प्रथम श्लोक से 12वें श्लोकपर्यन्त भगवत्–प्राप्ति के उपाय, श्रीकृष्ण के सगुण व निर्गुण उपासकों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। 13वें श्लोक से 20वें श्लोक तक भगवत्प्राप्ति करने वाले पुरुषों के स्वभाव व प्रभाव का निरूपण है। ज्ञान, ध्यान से बढ़कर है। ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। इसका प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि –

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।12/12।।

तत्त्व को जाने बिना किए गए अभ्यास से परम प्रभु का ज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के रूप का ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान से भी बढ़कर सब कर्मों के फल का त्याग है क्योंकि कर्मफल त्याग से ही परम शान्ति प्राप्त होती है। मार्ग सब हैं। साधक की रुचि, क्षमता और स्थिति के अनुसार इनमें से कोई भी फलदायी हो सकता है। जो भगवद्प्रेम में मग्न है, वह अपने मार्ग पर बढ़ता रहे। जो ज्ञानी है, वह ज्ञानपूर्वक साधना करे। जो ध्यानी है, वह ध्यान–साधना करता रहे। जो भगवान को समर्पित है, वह उस दृष्टि से काम करे। यदि इन सब में मन न लगे तो सर्वकर्मफलत्यागी बने। इन मार्गों में श्रेष्ठ कौन सा है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि जिस मार्ग से शान्ति मिले, वही श्रेष्ठ है।

6 म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज

भारत भूमि वीर–जननी कहलाती है। यहाँ समय–समय पर अनेक महापुरुषों व वीरों ने जन्म लिया। ऐसे ही वीरों में एक श्रेष्ठ वीर थे–शिवाजी। महाराष्ट्र के घर–घर में माताएँ अपने बालकों को उनकी वीरता की कहानियाँ सुनाया करती हैं। शिवाजी आदर्श मातृभक्त सपूत, निर्भीक, वीर, साहसी, शौर्यवान, सुशासक और राज्य–निर्माता थे। इन्हीं गुणों के कारण उन्हें कवि भूषण ने शेर कहा–

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन बारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यों सहसबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृगझुण्ड पर भूषन बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।

भारतवर्ष के दक्षिण–पश्चिमी भाग में स्थित महाराष्ट्र प्रदेश में शिवाजी का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम शाहजी भोंसले और माता का नाम जीजाबाई था। शाहजी बीजापुर दरबार में सेवारत थे। जीजाबाई महान देशभक्त और वीरांगना थीं। उन्होंने ही शिवाजी को शिवाजी बनाया था। जीजाबाई की माँ भवानी पर बड़ी श्रद्धा थी। इसी कारण शिवाजी में भी माँ भवानी पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। कहते हैं कि माँ भवानी ने प्रकट होकर शिवाजी को तलवार भेंट की थी।

शिवाजी के पिता शाहजी ने दूसरा विवाह कर लिया था। जीजाबाई को इससे बहुत दुःख हुआ और वह शिवाजी को लेकर पूना के पास एक छोटी–सी जागीर में रहने लगी। अब जीजाबाई का जीवन संन्यासिनी के समान हो गया। उनका मन धर्म की ओर अधिक झुक गया, जिसका बालक शिवाजी पर बहुत प्रभाव पड़ा। माता पुत्र को रामायण और महाभारत की अनेक कथाएँ सुनाया करती थी।

शिवाजी की शिक्षा–दीक्षा दादा कोण्डदेव के द्वारा हुई। उन्होंने ही शिवाजी को अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा दी थी। शिवाजी ने बचपन से ही अपना काम स्वयं करना सीखा। इससे उनकी बुद्धि, कार्य–कुशलता और सहनशीलता के आश्चर्यजनक सुयोग से विकसित हुई। इसी कारण उनके हृदय में स्वाधीनता का दृढ़ भाव भी जाग्रत हुआ।

शिवाजी बाल्यावस्था से ही बड़े वीर, साहसी और निर्भीक थे। एक बार शाहजी बालक शिवाजी को बीजापुर के बादशाह के दरबार में ले गए। शाहजी ने बालक शिवाजी से कहा, "तुम बादशाह को झुककर सलाम करो।" पर शिवाजी ने न तो सलाम किया, न झुककर नम्रता प्रकट की। शाहजी ने जब डाँट–फटकार की, तो शिवाजी ने उत्तर दिया, "आपको तो मालूम है कि मैं अपनी माता और भवानी माँ को छोड़कर किसी के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाता।"

शिवाजी का चरित्र प्रबल और उज्ज्वल था। वे सब धर्मों का आदर करते थे। उन्होंने किसी मस्जिद को हानि नहीं पहुँचाई। जब कभी लड़ाई में मुस्लिम धर्मग्रन्थ कुरान की कोई प्रति उन्हें मिलती थी तो वे उसे आदर के साथ रखते थे और किसी मुसलमान को दान कर दिया करते थे। उनका धर्म सच्चा मानव–धर्म था।

शिवाजी महिलाओं के सम्मान का पूरा ध्यान रखते थे। जब कल्याण के किले पर शिवाजी का अधिकार हो गया, तो उनके एक सेनापति ने कल्याण के नवाब की बेगम को पकड़ लिया। बेगम बहुत खूबसूरत थी। सेनापति ने बेगम को शिवाजी के सामने उपस्थित किया। बेगम के हाथ में कुरान का पवित्र ग्रन्थ था। शिवाजी ने कुरान को तो चूम लिया और बेगम को देखकर कहा, "तुम सचमुच बड़ी खूबसूरत हो। काश! तुमने मुझे जन्म दिया होता। तब मैं भी तुम्हारे समान खूबसूरत होता।" शिवाजी ने बड़े आदर से कुरान और बेगम को नवाब के पास भेज दिया।

शिवाजी बड़े बुद्धिमान और दाँव–पेंच के कुशल खिलाड़ी थे। औरंगजेब ने मिलने के उद्देश्य से शिवाजी को आगरा बुलाया। जब वे आगरा गए तो औरंगजेब ने उन्हें बन्दी बना लिया। शिवाजी अपने पुत्र के साथ मिठाई के टोकरे में छिपकर कैद से बाहर निकल आए। औरंगजेब सिर पीटकर रह गया पर वह फिर शिवाजी को गिरफ़्तार नहीं कर सका।

शिवाजी अपनी माँ के अनन्य भक्त थे। एक बार शिवाजी की माँ ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, "शिवाजी, मेरे मन को शान्ति तब मिलेगी जब तू कोण्ढाना के दुर्ग पर अधिकार कर लेगा।"

कोण्ढाना के दुर्ग को जीतना बड़ा कठिन था, पर माँ की इच्छा थी। शिवाजी ने शीघ्र ही ताना जी को कोण्ढाना के दुर्ग पर आक्रमण करने का आदेश दिया। ताना जी ने दुर्ग पर अधिकार तो कर लिया, पर उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। इस पर शिवाजी ने बड़े ही दुःख के साथ कहा, "गढ़ तो आया, पर सिंह चला गया।"

उसी समय से कोण्ढाना के दुर्ग का नाम सिंहगढ़ पड़ गया।

शिवाजी अपने गुरु स्वामी रामदास के बड़े भक्त थे। उन्हें राजपाट का बिल्कुल मोह न था। एक बार स्वामी रामदास ने सतारा के किले में 'जय जय श्री रघुवीर समर्थ' का जयघोष कर भिक्षा माँगी तो

शिवाजी ने एक कागज़ पर अपना सारा राज्य स्वामीजी के नाम लिखकर, उस कागज़ को उनकी झोली में डाल दिया। स्वामी रामदास उस कागज़ को पढ़कर हँस पड़े। उन्होंने हँसते हुए कहा, ''शिवा, ठीक है, यह राज्य मेरा है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ पर तुम्हें आदेश देता हूँ कि इसके संचालन का दायित्व तुम्हारा है।''

शिवाजी ने अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त की। उन्होंने मुगलों को महाराष्ट्र से निकालकर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। वास्तव में भारत के नक्शे में महाराष्ट्र ही एक ऐसा राज्य था, जो औरंगजेब के शासन काल में स्वतन्त्र हो गया था। इसका श्रेय शिवाजी को ही जाता है।

शिवाजी 6 जून, 1674 को हिन्दू रीति के अनुसार राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने छत्र धारण किया और हाथी पर सवार होकर अपने दल–बल के साथ रायगढ़ के रास्ते से जुलूस निकाला। आगे दो हाथियों के ऊपर दो झण्डे थे, जिनमें एक भगवा झण्डा था, जो श्री गुरु रामदास के गेरुए वस्त्र का टुकड़ा था।

लगभग छह वर्ष पश्चात् 3 अप्रैल, 1680 को शिवाजी का स्वर्गवास हो गया। सारा महाराष्ट्र वज्राहत हो गया। उनकी याद हमारे हृदय में सदा अमर रहेगी।

अभ्यास

1. शिवाजी ने सर्वधर्म समभाव की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त की?
2. शिवाजी के व्यक्तित्व–निर्माण में उनकी माँ की क्या भूमिका थी?
3. पाठ के किस प्रसंग से पता चलता है कि शिवाजी बचपन से ही निर्भीक और साहसी थे?
4. औरंगजेब की कैद से मुक्त होने के लिए शिवाजी ने क्या उपाय किया?
5. 'गढ़ तो आया, पर सिंह चला गया' – शिवाजी का यह कथन किस घटना की ओर संकेत करता है?
6. शिवाजी का राज्याभिषेक कब व किस प्रकार हुआ?
7. मध्यकालीन भारत के उदार हृदय शासकों की सूची बनाओ तथा उनके प्रेरणादायी कार्यों या प्रसंगों की चर्चा करो।
8. शिवाजी के जीवन से हमें क्या प्रेरणा मिलती है?
9. मध्यकालीन शासकों में शिवाजी की क्या विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है?
10. अपने गुरु की झोली में सारा राज्य लिखकर डालने से शिवाजी का क्या मनोभाव प्रकट होता है?
11. ऐसे वीर योद्धाओं की सूची बनाओ, जिन्होंने मातृभूमि की आज़ादी के लिए संघर्ष किया।

7 गणित गौरव ब्रह्मगुप्त

महान ज्योतिषी और गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त का जन्म 598 ई0 अर्थात् 520 शक संवत् (655 वि0सं0) में हुआ था। इनका जन्म स्थान भिनमाल, माउण्ट आबू, राजस्थान में है। यह स्थान गुजरात राज्य की सीमा से लगा हुआ है। ब्रह्मगुप्त के पिता का नाम विष्णुगुप्त था। ब्रह्मगुप्त उज्जैन गुरुकुल (वर्तमान मध्यप्रदेश) के प्रमुख खगोलशास्त्री थे।

ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिषशास्त्र के दो प्रसिद्ध ग्रन्थों– 'ब्रह्मस्फुट–सिद्धान्त' और 'खण्ड–खाद्य' की रचना की थी। ब्रह्मस्फुट–सिद्धान्त' की रचना 30 वर्ष की आयु में सन 628 ई. में की थी। ब्रह्मगुप्त से पूर्व भी 'ब्रह्म–सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ लिखा जा चुका था, किन्तु उसकी बातें न स्पष्ट थीं और न ही नवीन ज्ञान पर आधारित थीं। इसीलिए ब्रह्मगुप्त ने नया सिद्धान्त ग्रन्थ लिखा ब्रह्मस्फुट–सिद्धान्त। 'स्फुट' का अर्थ है, फैलाया हुआ अथवा संशोधित। यह ग्रन्थ भारतीय खगोल शास्त्र का प्रामाणिक एवं मानक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 25 अध्याय और 1008 श्लोक हैं। इसके 12वें अध्याय को गणिताध्याय नाम दिया है अर्थात् इसमें अंकगणित तथा क्षेत्रमिति सम्बन्धी विषयों पर सामग्री दी गई है। इसके 18वें अध्याय को कुट्टकाध्याय नाम दिया है, इसमें बीजगणित, अनिर्धार्य रैखिक एवं वर्ग समीकरणों के हल दिए हैं। इसके अध्याय 2 में त्रिकोणमिति पर कार्य किया गया है। ब्रह्मगुप्त ने गणित विषय के अध्यायों में अंकगणित के सभी प्रक्रमों का ज्ञान दिया है। यही नहीं, उन्होंने गणित विषय से सम्बन्धित शून्य के उपयोग के नियम खोजे। इसी कारण भारतीय गणितज्ञों में सर्वप्रथम आर्यभट्ट, उसके बाद भास्कराचार्य प्रथम, तत्पश्चात् ब्रह्मगुप्त का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। ब्रह्मगुप्त पहले गणितज्ञ थे, जिन्होंने गणित ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की और ज्योतिष तथा गणित को अलग–अलग अध्यायों में बाँटा।

ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है– बीजगणित। उन्होंने बीजगणित को कुट्टक की संज्ञा दी है। ब्रह्मगुप्त ने समीकरणों के नए हल सुझाए। वे π का मान $\sqrt{10}$ मानकर चले हैं। उन्होंने न केवल वर्गीकरण की विधि का वर्णन सर्वप्रथम किया बल्कि विलोम विधि का भी सटीक और विस्तृत वर्णन किया है। ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ में 24 प्रकार के प्रश्नों के हल

प्रस्तुत किए हैं। इनमें जोड़ना, घटाना, त्रैराशिक भाण्ड, प्रति भाण्ड, श्रोणी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति, चित्र व्यवहार (ढाल, खाई आदि के घनफल जानने की रीति) त्रैवाचिक व्यवहार, राशि व्यवहार (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति) छाया व्यवहार (इसमें दोष सम्बन्ध तथा उसके स्तम्भ की अनेक रीतियाँ) आदि हैं।

ब्रह्मगुप्त का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है 'खण्ड–खाद्य'। इसकी रचना उन्होंने सन 665 ई0 में की थी। इस ग्रन्थ में विशेषकर अन्तर्वेशन तथा समतल त्रिकोणमिति एवं गोलीय त्रिकोणमिति दोनों में (ज्या) और (कोटिज्या) के नियम उपलब्ध हैं। ब्रह्मगुप्त के दोनों ग्रन्थ भाण्डारकार प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर, पुणे, महाराष्ट्र में देखे जा सकते हैं। ब्रह्मगुप्त के इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में 'सिन्द हिन्द' और 'अलठ–अरकन्द' नामक ग्रन्थों के रूप में किया गया। इस प्रकार इनकी प्रसिद्धि अरब देशों तक पहुँची और वे भारतीय गणित तथा ज्योतिष से लाभान्वित हुए। बाद में अंग्रेज विद्वान कोलबुक ने सन 1817 में कुट्टकाध्याय अर्थात् बीजगणित का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। तब पाश्चात्य विद्वानों को पता चला कि आधुनिक बीजगणित वास्तव में भारतीय बीजगणित पर आधारित है।

उन्होंने गणित के क्षेत्र में–

1. वर्गमूल तथा घनमूल ज्ञात करने की सरल विधियाँ दी हैं।
2. शून्य के गुणधर्म की व्याख्या करते हुए उसे एक अलग अंक के रूप में उल्लेखित किया। शून्य के उपयोग के नियम खोजे।
3. ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय 12 श्लोक संख्या 44 में उन्होंने वर्ग समीकरण के मूल ज्ञात करने की विधि दी है, जो इस प्रकार है–

   वर्गचतुर्गुणितानां रूपाणां मध्य वर्ग सहितानाम्।

   मूलं मध्येनोनं वर्गद्विगुणोधृतं मध्यः ।।

   वर्तमान में प्रचलित सूत्र तथा इस विधि में समानता है।
4. इसी प्रकार इन्होंने त्रिभुज तथा चक्रीय चतुर्भुज के क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधि बताते हुए लिखा है–

स्थूलफलं त्रिचतुर्भुजबाहू प्रतिबाहुयोग दसघातः भुजयोगार्धचतुष्टय भुजोनघातात् पदं सूक्ष्मम्।।

भुजाओं के योग के आधे को चार बार लिखकर भुजाएँ घटाएँ। इन्हें गुणा कर वर्गमूल निकालें।

चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल = $\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$

जहाँ a, b, c एवं d चक्रीय चतुर्भुज की भुजाएँ हैं तथा $2s = a+b+c+d$ है।

त्रिभुज का क्षेत्रफल = $\sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)}$ तथा $2s = a+b+c$

यह सूत्र ब्रह्मगुप्त प्रमेय के नाम से प्रसिद्ध है, जो यूरोप में प्रथम बार डब्लू स्नैल ने (1619 ई.) में अपने एक ग्रन्थ की टीका में दिया।

5. चक्रीय चतुर्भुज की भुजाएँ ज्ञात होने पर उसके कर्णों की लम्बाइयाँ ज्ञात करने का उन्होंने निम्नलिखित सूत्र दिया है–

कर्णाश्रित भुज घाततैक्यमुभयथान्योन्यभाजितं गुणयेत्। योगेन भुजप्रतिभुजवधयोः कर्णौ पदे विषमे।

यदि a, b, c एवं d चक्रीय चतुर्भुज की भुजाएँ हों तो

AC कर्ण–1 (x) = $\dfrac{\sqrt{(ad+bc \times (ac+bd)}}{ab+cd}$

BD कर्ण–2 (y) = $\dfrac{\sqrt{(ab+cd \times (ac+bd)}}{ad+bc}$

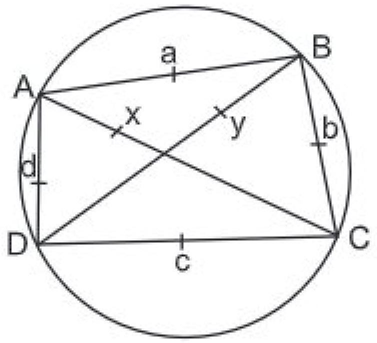

आधुनिक गणित के एक इतिहासवेत्ता हावार्ड ईव्स के शब्दों में कर्ण की लम्बाई ज्ञात करने के ये सूत्र भारतीय ज्यामिति के सबसे विलक्षण और उत्तमता में अनुपम हैं। गणित के क्षेत्र में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को देखकर प्रसिद्ध ज्योतिषी एवं गणितज्ञ भास्कराचार्य ने उन्हें 'गणक चक्र चूड़ामणि' नाम से सम्मानित किया। पाश्चात्य जगत में अनिवार्य वर्ग–समीकरण का श्रेय जॉन पेल (1688 ई0) को है किन्तु भारत में ब्रह्मगुप्त उनसे एक हजार वर्ष पहले अनिवार्य वर्ग–समीकरण–अय^2 + 1 = र^2 का हल प्रस्तुत कर चुके थे।

गणित में नई खोज करने के लिए ब्रह्मगुप्त हमारे लिए प्रेरणास्रोत तो हैं ही, अनुकरणीय भी हैं। इस महान गणितज्ञ की मृत्यु 680 ई0 में हुई थी।

अभ्यास

1. महान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. ब्रह्मगुप्त के खगोलशास्त्र से सम्बन्धित प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम बताओ।
3. ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रतिपादित 'कुट्टकाध्याय' का सम्बन्ध गणित की किस शाखा से है?
4. ब्रह्मगुप्तकृत 'खण्ड–खाद्य' का मुख्य विषय क्या है?
5. 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' व 'खण्ड खाद्य' का अरबी भाषा में अनुवाद किन ग्रन्थों के रूप में किया गया है?
6. ब्रह्मगुप्त का गणित के क्षेत्र में क्या योगदान है?
7. पाठ में किन–किन महान गणितज्ञों के नाम आए हैं?
8. किस विद्वान ने बीजगणित का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है?
9. ब्रह्मगुप्त प्रमेय का सूत्र चार्ट पर लिखकर कक्षा में लगाओ।
10. आधुनिक भारत के तीन प्रतिष्ठित गणितज्ञों के चित्र एकत्र कर कक्षा कक्ष में लगाओ तथा उनके गणित सम्बन्धी कार्यों की चर्चा करो।

8 दिव्य चेतना पुरुष रामकृष्ण परमहंस

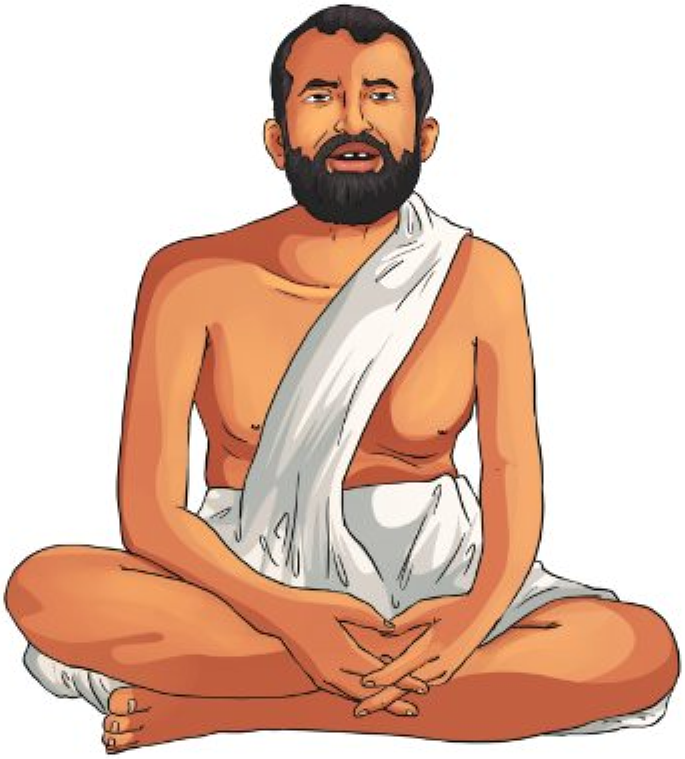

आधुनिक युग में भारत की सुप्त चेतना को अपने अलौकिक स्पर्श से स्पन्दित कर कालजयी संस्कृति को पुनःस्थापित करने वाले प्रतिभावान व्यक्तियों में रामकृष्ण परमहंस का नाम अग्रगण्य है। विभिन्न मतों और वादों के झंझावातों से आक्रान्त मानवता को जिस सद्भाव और समरसता की आवश्यकता है, वे उसके मूर्तिमान रूप हैं।

रामकृष्ण का जन्म 17 फरवरी, 1836 को पश्चिमी बंगाल के हुगली जिले के कामारपुर नामक गाँव में हुआ। उनका असली नाम गदाधर था। उनकी माता का नाम चन्द्रमणि तथा पिता का नाम खुदीराम चट्टोपाध्याय था। संन्यास लेने के बाद गदाधर का नाम रामकृष्ण पड़ा। परिवार के धार्मिक वातावरण का उनके बाल मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। बचपन में वे हँसमुख और नटखट भी थे। उनमें नारी सुलभ माधुर्य व भावुकता थी, जो अन्तिम समय तक बनी रही। उनका कण्ठ स्वर बहुत मधुर था। वे श्रीकृष्ण के गाय चराने के गीत बड़ी मधुरता के साथ गाते थे। संगीत और काव्य में उनकी विशेष अनुरक्ति थी। देवी–देवताओं के अभिनय में उन्हें इतने आनन्द की अनुभूति होती थी कि उनकी अपनी सत्ता का लोप हो जाता था। एक बार वे शिवरात्रि के अवसर पर शिव की भूमिका अभिनीत कर रहे थे। भावातिरेक में उनकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगी तथा वे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। दर्शकों ने सोचा कि शायद गदाधर की मृत्यु हो गई है।

जब रामकृष्ण सात वर्ष के थे, तब उनके पिता की मृत्यु हो गई। परिवार को घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय समाज में जाति–पाति का बोलबाला कुछ अधिक था। उनके गाँव में एक धनी शूद्र ने उनसे आग्रह करके यह वचन ले लिया था कि यज्ञोपवीत के समय वे सबसे पहले उसी का दान स्वीकार करेंगे। जब उनके बड़े भाई रामकुमार को इस बात

का पता चला तो वे परेशान हो गए। उन दिनों किसी ब्राह्मण का शूद्र से दान लेना असम्भव–सा था। ऐसा कृत्य उन्हें समाज से बहिष्कृत करा सकता था। उन्होंने रामकृष्ण को बहुत समझाया परन्तु वे अपने वचन से टलने को तैयार नहीं हुए और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए उन्होंने उस धनी शूद्र से पहला दान स्वीकार किया।

आजीविका की तलाश में उनके बड़े भाई कलकत्ता चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने एक पाठशाला की स्थापना की। सन 1852 में उन्होंने रामकृष्ण को भी वहीं बुला लिया किन्तु रामकृष्ण ने वहाँ पढ़ने से इनकार किया। इसी दौरान कलकत्ता की एक सम्पन्न महिला रासमणि ने माँ काली का एक मन्दिर बनवाया था। वहाँ पुरोहित का कार्य करने के लिए एक ब्राह्मण की आवश्यकता थी। किन्तु कोई भी इस मन्दिर का दायित्व अपने ऊपर लेने के लिए तैयार नहीं था क्योंकि मन्दिर की प्रतिष्ठात्री एक शूद्राणी थी। रामकुमार ने यह दायित्व सहर्ष स्वीकार किया। अगले वर्ष बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण ने मन्दिर की पुरोहिती का दायित्व सँभाल लिया।

अब रामकृष्ण का एकमात्र कार्य काली माँ की सेवा करना था। वे सारा दिन माँ के समस्त कार्यों में उनके साथ रहते। माँ काली का परिधान परिवर्तन करते, उसे अर्घ्य चढ़ाते, भोग भी लगाते थे। वे देवी के साथ इस प्रकार घनिष्ठता का व्यवहार करते कि देखने में विस्मयकारी प्रतीत होता। उनका यह प्रेमोन्माद दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। लोग उनके इस प्रेमोन्माद की निन्दा भी करते थे। जब यह समाचार उनकी माता के पास पहुँचा तो उन्होंने रामकृष्ण का विवाह करने की इच्छा प्रकट की। उनका विचार था कि ऐसा करने से उनका मन सांसारिक कार्यों की ओर मुड़ जाएगा। विवाह के पश्चात् वे फिर मन्दिर में आ गए। मन्दिर में प्रवेश करते ही उनका वह भक्तिमय उन्माद पहले से भी अधिक वेग से प्रकट हुआ। उनका मानसिक सन्तुलन छिन्न–भिन्न–सा हो गया। उनके नेत्रों के पलक गिरने बन्द हो गए। वे एकटक काली माँ को निहारते रहते और प्रार्थना करते। दो वर्ष तक उनकी यही दशा रही।

एक दिन दक्षिणेश्वर में भैरवी नाम की एक संन्यासिनी आई। रामकृष्ण को देखते ही उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उसने कहा, ''वत्स, न मालूम कितने दिनों से मैं तुम्हें तलाश रही हूँ।'' काली के भक्त रामकृष्ण और भैरवी के मध्य उसी समय माता–पुत्र का सम्बन्ध स्थापित हो गया। रामकृष्ण ने उन्हें अपनी आध्यात्मिक माता एवं शिक्षिका के रूप में स्वीकार किया। भैरवी ने रामकृष्ण को आध्यात्मिक साधना के सभी मार्गों, यहाँ तक कि तान्त्रिक साधना भी सिखा दी। भैरवी के प्रभाव से ही वे ईश्वर को माँ के रूप में पूजने लगे किन्तु उनकी आध्यात्मिक ज्ञान की यात्रा अभी पूरी नहीं हुई थी। सन 1864 में एक वेदान्तिक पण्डित व साधक तोतापुरी ने उनको वेदान्त की शिक्षा दी। उनकी समझ में आ गया कि साकार और निराकार एक ही सत्ता है, यह वैसे ही एक है, जैसे– दूध और उसकी धवलता, हीरा और उसकी चमक अथवा सर्प और उसकी वक्रता। एक के बिना दूसरे का विचार ही असम्भव है। माँ और ब्रह्म दोनों एक ही हैं।

मन्दिर में सभी पन्थ–सम्प्रदायों के लोग आकर ठहरते थे। वहीं पर एक दिन रामकृष्ण ने गोविन्दराय नामक गरीब मुसलमान को पूजा व प्रार्थना करते हुए देखा। वे समझ गए, इस व्यक्ति ने इस्लाम के द्वारा भगवान को पा लिया है। उन्होंने उस मुसलमान की प्रेरणा से कुरान पढ़ी।

अब वे मन्दिर की सीमा से बाहर रहकर अल्लाह का नाम जपने लगे। एक भिन्न विचारधारा के प्रति उनका यह समर्पण विस्मित करने वाला था। इस्लाम साधना के इस अनुभव की उनके व्याख्याताओं ने इस प्रकार व्याख्या की है कि भारत के ये दोनों सम्प्रदाय अद्वैत व निराकार ब्रह्म के आधार पर ही परिभाषित हैं।

इसी प्रकार एक अनुभव द्वारा रामकृष्ण का ईसाई धर्म के साथ भी साक्षात् परिचय हो गया था। सन 1874 में कलकत्ता के मल्लिक नामक एक हिन्दू ने उन्हें बाइबिल पढ़कर सुनाई। यहाँ पहली बार रामकृष्ण को ईसा का परिचय प्राप्त हुआ। एक दिन उन्होंने दीवार पर टँगा हुआ मेरी और उसके पुत्र का चित्र देखा। चित्र को देखकर वे भावमुग्ध हो गए। उन्हें लगा कि वे दृश्य मूर्तियाँ उनके अन्दर प्रवेश कर गई हैं और उनके समस्त बन्धनों को तोड़ दिया है। कई दिनों तक वे ईसाई चिन्तन व ईसा के प्रेम में ही मग्न रहे। वे ईसा के साथ एकाकार हो गए। उस समय से वे ईसा के देवत्व में विश्वास करने लगे। परन्तु उनके लिए केवल ईसा ही भगवान के अवतार नहीं थे। ईसा से पूर्व कृष्ण और बुद्ध भी अवतार हुए हैं। जैन तीर्थंकरों व सिक्ख गुरुओं के प्रति भी उनके मन में श्रद्धाभाव था।

विभिन्न साधना मार्गों व पन्थों की जानकारी प्राप्त करने के बाद उन्होंने समझ लिया था कि सभी धर्मों में ईश्वर एक ही है। केवल उसे प्राप्त करने के मार्ग अलग–अलग हैं। वे अपने शिष्यों से कहते थे, ''मैंने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मों का अनुशीलन किया है। मैंने देखा है कि उसी एक भगवान की तरफ सबके कदम बढ़ रहे हैं, यद्यपि उनके पथ अलग–अलग हैं।''

रामकृष्ण की दृढ़ भक्ति और सच्ची विरक्ति को देखकर लोग उनकी ओर आकृष्ट होने लगे। अनेक लोग उनके अनुयायी भी बन गए। अपने समय के प्रसिद्ध समाज सुधारक केशवचन्द्र सेन उनसे बहुत प्रभावित हुए। यद्यपि केशवचन्द्र रामकृष्ण के प्रेमोन्माद को पहले सन्देह की दृष्टि से देखते थे तथा इसे रुग्णता मात्र मानते थे किन्तु भगवान के बारे में रामकृष्ण के प्रवाहपूर्ण प्रभावशाली शब्दों को सुनकर तथा विचार–बुद्धि की स्पष्टता को देखकर वे आश्चर्य में डूब गए।

नरेन्द्र, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए, रामकृष्ण के ही शिष्य थे। इन्हीं स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की धर्म–संसद में वेदान्त और भारतीय संस्कृति की तार्किक व्याख्या कर पूर्वाग्रही यूरोप व अन्य धर्मावलम्बियों के ज्ञान चक्षु खोल दिए।

रामकृष्ण तन और मन दोनों से अत्यन्त संवेदनशील थे। अधिक शीत–ताप उनसे सहन नहीं होता था। एक बार ठण्ड लगने से उनका गला सूज गया और वहाँ घाव बन गया। डॉक्टरों ने उन्हें बोलने से मना किया परन्तु उन्होंने डॉक्टरों की बात नहीं मानी और उपदेश देना जारी रखा। इससे उनकी तकलीफ और बढ़ गई। इतना होने पर भी उनके होठों पर सदैव मुस्कान रहती थी। रामकृष्ण का स्वास्थ्य दिन–प्रतिदिन बिगड़ता गया। दिसम्बर 1885 में उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए कलकत्ता के समीप कोसीपुर के उद्यान में ले जाया गया। अपने जीवन के शेष आठ मास उन्होंने वहीं पर व्यतीत किए।

अभ्यास

1. रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताओ।
2. रामकृष्ण को बचपन में क्या शौक था?
3. उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज की जाति व्यवस्था कैसी थी?
4. किस घटना से पता चलता है कि रामकृष्ण बचपन से ही दृढ़ निश्चयी थे?
5. रामकृष्ण ने तान्त्रिक साधना की शिक्षा किससे प्राप्त की?
6. उनका अपने तान्त्रिक गुरु से किस प्रकार सम्बन्ध बना?
7. रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को क्या सन्देश दिया?
8. विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति उनके विचार किस प्रकार के थे?
9. वेदान्त ज्ञान प्राप्त कर उनकी समझ किस प्रकार विकसित हुई?
10. केशवचन्द्र सेन की रामकृष्ण के सम्बन्ध में धारणा किस प्रकार परिवर्तित हुई?
11. रामकृष्ण का जीवन भारतीय संस्कृति की मूर्तिमान अभिव्यक्ति कैसे है?
12. शिकागो की धर्मसंसद से पूर्व भारत के धर्म–दर्शन और संस्कृति के बारे में यूरोपवासियों के क्या विचार थे?
13. अपने पुस्तकालय से रामकृष्ण परमहंस की जीवनी पढ़ो और चर्चा करो।

9 मुस्लिम धर्म का उपवास पर्व : रमज़ान

साल के बारह महीनों में रमज़ान का महीना मुसलमानों के लिए खास मायने रखता है। यह महीना संयम और समर्पण के साथ खुदा की इबादत (प्रार्थना) का महीना माना जाता है, जिसमें हर व्यक्ति अपनी आत्मा को पवित्र करने के साथ ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है। जिस अल्लाह ने आदमी को पैदा किया है, उसके लिए हर प्रकार का त्याग कर्तव्य बन जाता है। इसलिए तकवा (संयम) लाने के लिए रमज़ान के पूरे महीने में रोज़े रखे जाते हैं। मनुष्य को अपनी गलतियाँ सुधारने का अवसर भी रमज़ान के रोज़े में मिलता है।

खुद को खुदा की राह में समर्पित कर देने का प्रतीक, पाक महीना माह–ए–रमज़ान कहा जाता है। रमज़ान इस्लामी कैलेण्डर का नौवाँ महीना है। रमज़ान अरबी के रम्ज़ से बना है। इसका मतलब है संयम, नियन्त्रण। ईश्वर के प्रति श्रद्धा और सही मार्ग पर चलने का संकल्प ही रमज़ान है।

रमज़ान का महीना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अल्लाह ने इसी माह में हिदायत की सबसे बड़ी पवित्र किताब, कुरान–ए–शरीफ का दुनिया में अवतरण आरम्भ किया था।

पूरे साल में ग्यारह महीने तक इंसान दुनियादारी के झंझावातों में फँसा रहता है। इसलिए अल्लाह ने रमज़ान का महीना आदर्श जीवनशैली के लिए तय किया है। रमज़ान का उद्देश्य लोगों को ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखकर भलाई के रास्ते पर आगे चलने के लिए उत्साहित करना है। यह महीना इंसान को अपने अन्दर झाँकने तथा खुद का मूल्यांकन कर सुधार करने का अवसर देता है।

रमज़ान में तीस दिन का रोज़ा (व्रत) रखा जाता है। रोज़ा अर्थात् बुराइयों से परहेज़ करना। रोज़ा हमें झूठ, हिंसा, बुराई, रिश्वत तथा अन्य गलत कार्यों से बचने की प्रेरणा देता है। इसी का

अभ्यास पूरे महीने कराया जाता है ताकि इंसान सभी बुराइयों से बचे तथा दूसरों के प्रति हमदर्दी का भाव रखे। रोजे रखने वाला इंसानों के दुःख दर्द और भूख प्यास को समझता है। स्वयं को बदनीयती, भड़काऊ संगीत, अपशब्दों, कानाफूसी आदि सांसारिक गतिविधियों से दूर रखता है।

पाँच कर्तव्य

पैगम्बर साहब ने अपने अनुयायियों के लिए पाँच अनिवार्य कर्तव्य निर्धारित किए। वे इस प्रकार हैं– (1) कलमा (धर्म स्वीकृति), (2) नमाज़ (प्रार्थना), (3) ज़कात या सदका (एक प्रकार का दान) (4) रोज़ा (उपवास) और (5) हज (मक्का की मस्जिद के लिए तीर्थ यात्रा)

- माँ–बाप के लिए दुआ (प्रार्थना) करें। उनकी नाफ़रमानी (अवज्ञा) कतई न करें।
- नेक कामों की ओर बढ़ें।
- गरीबों के प्रति हमदर्दी रखें। ज़कात, फितरा, सदका (दान) से उनकी मदद करें।
- कुरान का विशेष रूप से अध्ययन, चिन्तन एवं अनुपालन करें।
- किसी को तकलीफ न पहुँचाएँ।
- आपस में प्रेमपूर्वक रहें।
- खूब तालीम (शिक्षा) हासिल करें और तालीम को फैलाएँ।
- दरिन्दगी (अमानवीयता) और वहशीपन (कुतर्क भावना) को छोड़ें।
- ईमान को मज़बूत रखें।
- झूठ न बोलें।
- अधिक समय इबादत (ईश्वरीय प्रार्थना) में व्यतीत करें।
- अहंकार त्यागें।
- हर बुराई से स्वयं बचें और दूसरों को भी बचाएँ।
- सभी इंसानों को समानता का दर्जा दें।
- समाज में फैली बुराइयों का अन्त करने के लिए आगे आएँ।
- शालीन, सभ्य और संयमी बनें।
- दूसरों के साथ अदब (सभ्यता) से पेश आएँ।
- दूसरों की परेशानियों को समझें।
- बेईमानी, बदनीयती छोड़ें।
- परोपकारी बनें।
- दूसरों की बुराई न करें।
- पड़ोसियों का खयाल रखें।

- गलत व बुरी सोच से स्वयं को बचाएँ।
- देश में अमन–चैन के लिए दुआ करें।
- न गलत देखें, न गलत सुनें और न गलत कहें।
- किसी की इज़्ज़त से खिलवाड़ न करें।
- व्यापार में माप–तोल सही रखें।
- ब्रह्मचर्य का पालन करें।
- शराब तथा अन्य नशीले पदार्थों के सेवन से बचें।
- किसी का हक न मारें। अच्छे तरीकों से रोज़ी कमाएँ।
- दूसरों पर आश्रित न रहें, मेहनत करें।

अभ्यास

1. रमज़ान से आप क्या समझते हैं?
2. रमज़ान का मुस्लिमों के लिए क्या महत्त्व है?
3. रमज़ान के महीने में रोज़ा रखने का क्या उद्देश्य है?
4. पैगम्बर साहब ने अपने अनुयायियों के लिए कौन से पाँच कर्तव्य निर्धारित किए?
5. मुस्लिम सम्प्रदाय के विभिन्न पर्वों के विषय में जानकारी एकत्र कर लिखो।
6. पाठ में शामिल सीख के बिन्दुओं पर यदि सभी लोग अमल करें, तो समाज में कितना सुधार होगा, सोचो और लिखो।
7. अपना अनुभव बताओ, जब समाज में फैली किसी बुराई या समस्या का अन्त करने के लिए आप आगे आए हों।
8. अपने किसी परिचित की उन आदतों की सूची बनाओ, जो आपको अच्छी लगती हैं।
9. 'अच्छे तरीकों से रोजी कमाएँ', विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
10. विभिन्न धर्मों की सीख दर्शाने वाला एक चार्ट बनाकर अपने कक्षाकक्ष में लगाओ व उनकी समानताओं पर चर्चा करो।

10 हौसलों की उड़ान

एक पौराणिक प्रसंग के अनुसार महाभारत के युद्ध में आहत हुए भीष्म ने दृढ़ इच्छा–शक्ति के बल पर अपनी मृत्यु को सूर्य के उत्तरायण होने तक टाल दिया था। प्रारम्भ में पढ़ाई से वंचित रहे कालिदास के अनवरत अध्ययन ने उन्हें महाकवि के पद पर अभिषिक्त किया और जन्मान्ध सूरदास ने साहित्य के क्षेत्र में वात्सल्य के चरम को छू लिया। विश्व के इतिहास में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, जब शारीरिक रूप से अशक्त लोगों ने भी मन की शक्ति के बल पर न केवल अपने लक्ष्य को प्राप्त किया अपितु अपने जीवन को आदर्श रूप में स्थापित भी किया। दृढ़ संकल्प के सामने शारीरिक निःशक्तता भी आड़े नहीं आती। किसी कवि ने क्या खूब कहा है :

मंजिल उनको ही मिलती है जिनमें जान होती है।
पंखों से कुछ नहीं होता हौसले से उड़ान होती है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए वर्ष 2014 में प्रथम स्थान पर चयनित इरा सिंहल शारीरिक निःशक्तता पर मन की शक्ति की विजय का अप्रतिम उदाहरण है। इरा उन व्यक्तियों के लिए जीवन्त प्रेरणास्रोत है, जो मामूली अभावों का रोना रोते हुए अपने पुरुषार्थ को परिस्थितियों के बहाव में बहा देते हैं।

मेरठ के एक शिक्षित परिवार में इरा सिंहल का जन्म हुआ। जन्म के समय वह पूर्ण स्वस्थ व सामान्य बालिका जैसी लगती थी लेकिन कुछ समय बाद उसकी रीढ़ की हड्डी असामान्य रूप से बढ़ने लगी। इस रोग का नाम स्कोलिओसिस है। स्कोलिओसिस के कारण रीढ़ की हड्डी सीधी रहने की बजाय एस आकार की हो जाती है। ऑपरेशन में जान का खतरा था। अतः माता–पिता ने ऑपरेशन कराने का जोखिम नहीं उठाया। यही नहीं, एक और चुनौती पिता राजेन्द्र सिंहल और उसकी बेटी का इन्तजार कर रही थी। वे जिस भी स्कूल में उसका दाखिला कराने जाते, स्कूल प्रबन्धन इरा की शारीरिक दिक्कत की वजह से दाखिला देने में आनाकानी करता।

सामान्यतः शारीरिक चुनौती से जूझते लोगों के प्रति समाज में सदाशयता कम ही देखने को मिलती है। कारण, व्यावसायिक बुद्धि को प्राप्त असन्तुलित सम्मान ने लोगों की संवेदनाओं को शुष्क कर दिया है। विद्यालय प्रशासन का ऐसा दृष्टिकोण संविधान प्रदत्त समानता के अधिकार का तो उल्लंघन है ही,

नैतिकता की घोर अवमानना भी है। प्रतिष्ठालब्ध शिक्षण–संस्थान सूचनाओं के ढेर और तथ्यात्मक ज्ञान–उपलब्धता में ही अपने शिक्षण दायित्व की पूर्णता समझते हैं। समाज उनसे कहीं अधिक की अपेक्षा करता है। समाज का संस्कार करना व कमजोरों को ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में भागीदार बनाना भी उनका दायित्व है। समाज का सुदृढ़ीकरण व उसका सांस्कृतिक नेतृत्व करना शिक्षण–संस्थाओं की दोहरी जिम्मेदारी है। खराब परीक्षा परिणाम आने की सम्भावना मात्र से इरा जैसे बच्चों को प्रवेश देने में बाधाएँ खड़ी कर वे जाने–अनजाने सामाजिक पूर्णता की अवेहलना करते हैं। अस्तु, इरा को बड़ी कठिनाई से स्कूल में प्रवेश मिलता। कुछ ही दिनों में वह अपनी प्रतिभा और मिलनसार स्वभाव द्वारा अपने साथियों और शिक्षकों के हृदय में स्थान बना लेती थी। ज़रूरतमन्द लोगों की सहायता का भाव उसमें बचपन से ही था। उसने आठ वर्ष की आयु में, जिस आयु में बच्चे अपने पैसों को टॉफी और कुरकुरे खाने में खर्च कर देते हैं, उत्तरकाशी के भूकम्प पीड़ितों के लिए अपने गुल्लक के 91 रुपये भिजवाए थे। उसकी इच्छा थी कि वह डॉक्टर बनकर असहाय लोगों की सेवा करे। लेकिन उसके पिता ने बेटी की शारीरिक परेशानी को देखकर उसे जीव विज्ञान विषय लेने से मना कर दिया। उनका कहना है कि मुझे लगा, इरा मेडिकल की पढ़ाई तो कर लेगी, पर खड़े होकर सर्जरी करने में इरा को दिक्कत होगी। उसको मजबूरी में कम्प्यूटर इंजीनियरिंग में प्रवेश लेना पड़ा। बेमन से इंजीनियरिंग की पढ़ाई करते हुए भी वह हर बार अच्छे अंक प्राप्त करती। तकनीकी पढ़ाई ने उसके हृदय की सरसता को छीन लिया हो, ऐसा नहीं था। कॉलेज के दिनों में वह नाटकों में अभिनय करती थी। अभिनय के साथ–साथ उसे कविता लिखने व साहित्य पढ़ने का भी शौक है। उसका मानना है कि अच्छा साहित्य मनुष्य को जीने की कला सिखाता है।

कम्प्यूटर की पढ़ाई के बाद उन्होंने फाइनेंस व मार्केटिंग में एम.बी.ए. किया तथा इस आधार पर एक कम्पनी में नौकरी भी की। नौकरी के दौरान ही इरा का मन सिविल सर्विस में जाने का बना। मेहनत व ध्येय के प्रति एकाग्रता से वे लगातार तीन बार सिविल सर्विस की परीक्षा में सफल रहीं लेकिन इरा का दुर्भाग्य भी कम हठीला नहीं था। शारीरिक असामान्यता के कारण उन्हें नियुक्ति नहीं दी जा सकी। इरा इस पर भी हार मानने वाली नहीं थी। वे अपने अधिकार के लिए कोर्ट गई। कोर्ट ने उनके पक्ष में फैसला सुनाते हुए सरकार को उन्हें नौकरी देने का आदेश दिया। इस प्रकार उन्हें भारतीय राजस्व सेवा में काम करने का अवसर मिला। लेकिन यह एक पड़ाव था, मंज़िल नहीं। उसने चौथी बार सिविल सर्विस की परीक्षा दी और इस बार वह हुआ, जिसकी सामान्य व्यक्ति तो कल्पना भी नहीं कर सकता। चयन सूची में इरा का स्थान सर्वोच्च था। उसकी इस उपलब्धि ने देश को चौंका दिया। उसने सिद्ध कर दिया कि यदि इरादे मज़बूत हों तो कोई मंज़िल दूर नहीं। उसकी यह संघर्ष गाथा उन युवक–युवतियों के लिए प्रेरणा–स्रोत बन सकती है, जो छोटी–सी असफलता मिलने पर ही जीवन को निस्सार समझने लगते हैं। हताशा के अन्धकार में डूबकर वे अपनी स्वाभाविक शक्ति का क्षरण कर लेते हैं। इरा कहती हैं, 'सफलता को जीवन या मरण का विषय नहीं बनाना चाहिए। पास नहीं हुए, तो इसका यह मतलब कतई नहीं है कि जीवन खत्म हो गया। एक काम में सफल नहीं हुए तो दूसरा करेंगे।'

निराशा और मुसीबतें सबके जीवन में आती हैं। यह एक सार्वभौमिक सत्य है। असफलता की अन्धकारमय अनुभूति से सफलता का प्रकाश फूटता है। कठिनाइयों का स्वरूप कैसा है, ध्येय की प्राप्ति में कोई सहयोगी है या नहीं। परिस्थितियों का प्रवाह अनुकूल है या प्रतिकूल, इससे कोई विशेष प्रभाव नहीं

पड़ता। प्रभाव पड़ता है तो इस बात से कि इस अन्धकार में प्रकाश ढूँढ़ने की आपकी शक्ति कितनी है। इस प्रकाश का स्रोत कहीं बाहर नहीं अपने अन्दर खोजना पड़ेगा। यही खोज न केवल आपके जीवन को बल्कि, दूसरों के जीवन को भी आलोकित करने का सामर्थ्य पैदा करेगी।

अभ्यास

1. भीष्म अपनी मृत्यु को टालने जैसा असम्भव कार्य कैसे सम्भव कर पाए?
2. समाज में सदाशयता का भाव कम क्यों हो रहा है?
3. औपचारिक शिक्षण के साथ–साथ शिक्षण–संस्थानों की और क्या जिम्मेदारी बनती है?
4. स्कूल–प्रबन्धन इरा को अपने स्कूल में प्रवेश देने में आनाकानी क्यों करता था?
5. किस प्रसंग से पता चलता है कि बचपन से ही इरा के मन में असहाय व मुसीबत में पड़े लोगों के लिए सहानुभूति का भाव था?
6. पिता ने इरा को जीव–विज्ञान विषय लेने से मना क्यों कर दिया?
7. सिविल सर्विस की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर भी इरा को पोस्टिंग क्यों नहीं मिली? क्या इससे वह निराश हो गई थी?
8. इरा के संघर्षों से आपको क्या प्रेरणा मिलती है?
9. शारीरिक अशक्तता की पूर्ति मन की शक्ति से हो सकती है लेकिन मन की क्षीणता को शरीर की शक्ति से दूर नहीं किया जा सकता है, विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
10. आप भी शारीरिक रूप से अशक्त कई ऐसे लोगों को जानते होंगे, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद जीवन में विशेष उपलब्धि प्राप्त की। ऐसे लोगों के बारे में चर्चा करो।
11. निःशक्त शब्द के स्थान पर आप और किन बेहतर शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। जानो और लिखो।

11 गिरिधर की कुण्डलियाँ

1. साईं सब संसार में, मतलब का ब्यौहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार।।
तब लग ताको यार, यार संग ही संग डोलैं।
पैसा रहा ना पास, यार मुख से नहिं बोलैं।।
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोइ साईं।।

2. बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान–पान सम्मान, राग रंग मनहि न भावै।।
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारै।
खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना विचारे।।

3. साईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजे त्रास।
पलक दूर नहीं कीजिये, सदा राखिये पास।।
सदा राखिये पास, त्रास कबहुँ नहिं दीजै।
त्रास दिये लंकेस, ताहि की गति सुन लीजै।।
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साईं।।

4. रहिए लटपट काटि दिन, बरु घामहि में सोय।
छाँह न वाकी बैठिए, जो तरु पतरो होय।।
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै।।
कह गिरिधर कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिए।।

5. बीति ताहि बिसारिदे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ।।
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ, चित्त में खता न पावै।।
कह गिरिधर कविराय, यही करु मन परतीती।
आगे की सुध लेइ, बीती सो बीती।।

अभ्यास

1. मित्रता के पीछे लोगों की सामान्यतः क्या भावना निहित होती है?
2. बिना सोचे–समझे काम करने का क्या परिणाम होता है?
3. भाई को त्रास देने वाले की क्या गति होती है?
4. कवि के मत में किस प्रकार की बातों को भुला देना चाहिए?
5. कवि गिरिधर ने व्यक्ति को पतले वृक्ष की अपेक्षा मोटे वृक्ष की छाया में बैठने का आग्रह किया है। यहाँ पतले और मोटे वृक्ष, कैसे लोगों के प्रतीक हैं?
6. धन के लालच में की गई मित्रता, संकट पड़ने पर काम नहीं आती। कैसे?
7. विवेक–सम्मत कार्य करने से क्या लाभ होता है?
8. अच्छी संगति का जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस कथन की पुष्टि के लिए अपने विचार लिखो।
9. 'अतीत में की गई गलतियों को याद कर निराश होने की अपेक्षा, उससे सीख लेकर नए कार्य में जुट जाना अधिक श्रेयस्कर है।' विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
10. आप अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों से कैसा व्यवहार करते हैं? आप उनसे कैसे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं?
11. कवि गिरिधर की पाँच अन्य कुण्डलियों का संकलन करो।

12 अभी समय है

अभी समय है, अभी नहीं कुछ भी बिगड़ा है,
देखो, अभी सुयोग तुम्हारे पास खड़ा है।
करना हो जो काम उसी में चित्त लगा दो,
आत्मा पर विश्वास करो, सन्देह भगा दो।

पूर्ण तुम्हारा मनोऽभीष्ट क्या अभी न होगा?
होगा तो बस अभी, नहीं तो कभी न होगा।
देख रहे हो श्रेष्ठ समय के किस सपने को?
छलते हो यों हाय! स्वयं ही क्यों अपने को?

आएगा कब समय, समय तो चला जा रहा,
देखो, जीवन व्यर्थ तुम्हारा छला जा रहा।
तो पुरुषों की भाँति खड़े हो जाओ अब भी!
करके कुछ जग–बीच बड़े हो जाओ अब भी।

उद्योगी को कहाँ नहीं सुसमय मिल जाता ?
समय नष्ट कर कहीं सौख्य कोई भी पाता?
आलस ही ये करा रहा है सभी बहाने,
जो करना है करो अभी, कल की क्या जाने!

पा सकते फिर नहीं कभी तुम इसको खोके,
चाहो तुम क्यों नहीं चक्रवर्ती भी होके।
कर सकता कब कौन द्रव्य है इसकी समता ?
फिर भी तुम को नहीं ज़रा भी इसकी ममता।

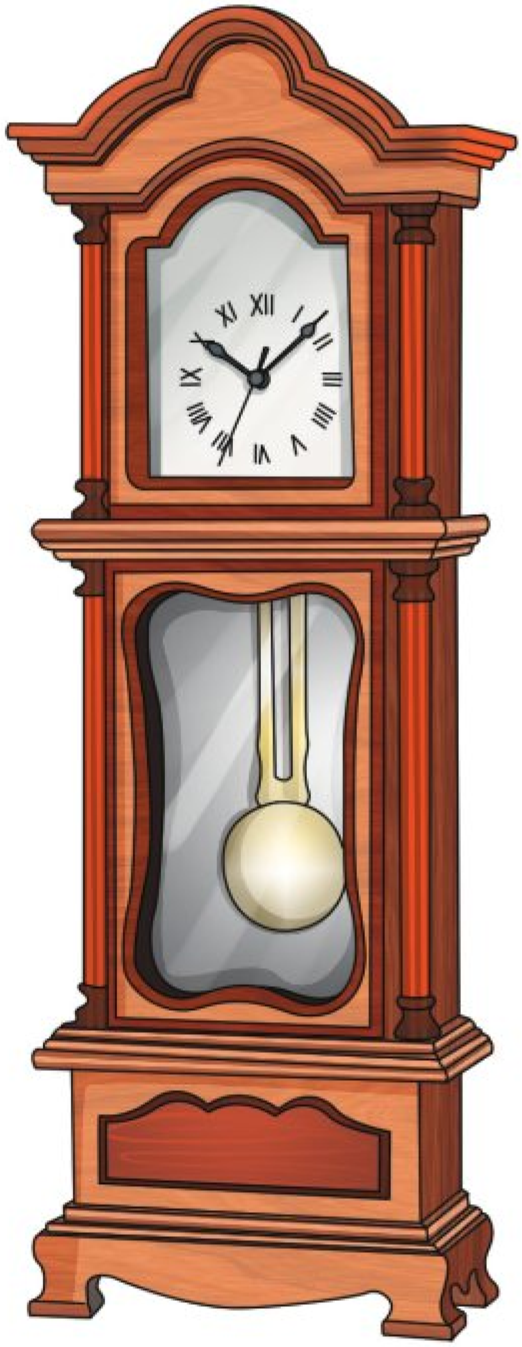

समय ईश का दिया हुआ अति अनुपम धन है,
यही समय ही अहो! तुम्हारा शुभ जीवन है।
इसका खोना स्वयं स्वजीवन का खोना है,
खोकर इसको स्वयं अल्प–आयु होना है।

तुच्छ नहीं तुम कभी एक पल को भी जानो,
पल–पल से ही बना हुआ जीवन को मानो।
इसके सद्व्यय रूप नीर सिंचन के द्वारा,
हो सकता है सफल जन्म–तरु यहाँ तुम्हारा।

ऐसा सुसमय भला और कब तुम पाओगे?
खोकर पीछे इसे सदा तुम पछताओगे!
तो इसमें वह काम नहीं क्यों तुम कर जाओ,
हो जिसमें परमार्थ तथा तुम भी सुख पाओ?

– सियारामशरण गुप्त

अभ्यास

1. 'अभी समय है,' से कवि का क्या तात्पर्य है?
2. कवि अपने से स्वयं को छलने की बात क्यों कह रहा है?
3. समय कैसे चला जा रहा है?
4. 'जग–बीच बड़े होने' से कवि का क्या तात्पर्य है?
5. आलस्य करने से कवि क्यों रोक रहा है?
6. समय कैसा धन है?
7. उचित समय चले जाने पर पछतावा क्यों करना पड़ता है?
8. मनुष्य कैसे कार्य करने से सुख की अनुभूति करता है?
9. कविता के अनुसार सफल जीवन के लिए क्या आवश्यक है?
10. दैनिक दिनचर्या की समय सारणी बनाओ, जिससे समय का अधिकतम उपयोग किया जा सके।
11. अपने विद्यालय के पुस्तकालय से कुछ ऐसी सामग्री एकत्र करो, जिसमें समय का महत्त्व बताया गया हो।
12. समय के महत्त्व पर कुछ नारे लिखो।
13. अपना कोई अनुभव बताओ, जिसमें आपने समय का पालन कर कार्य में सफलता प्राप्त की हो।

13 सद्‌व्यवहार

अच्छा, भला या उचित व्यवहार सद्‌व्यवहार है। सद्‌व्यवहार का अर्थ है अपने सम्पर्क में आने वाले हर प्राणी से मन, वचन और कर्म से अच्छा बर्ताव करना। सद्‌व्यवहार के मूल में दूसरों के कल्याण की कामना होती है। स्नेह, सौमनस्य ओर सहयोग के प्रसार के लिए सद्‌व्यवहार से बढ़कर और कोई उपाय नहीं। जीवन में सुख–शान्ति के लिए सद्‌व्यवहार अनिवार्य है। कहा भी गया है–

चार वेद छह शास्त्र में, बात मिली हैं दोय ।
दुःख दीने दुःख होत है, सुख दीने सुख होय।।

एक प्रसंग है– शिवधनुष टूटने का समाचार पाकर क्रोधाग्नि में जलते परशुराम यज्ञमण्डप में पहुँचते हैं। उनके क्रोध को देखकर उपस्थित जन–समुदाय समेत सभी राजा भय से काँपने लगते हैं। लक्ष्मण अपने व्यंग्य भरे वचनों से उनके क्रोध को और बढ़ा रहे हैं। यह देखकर राजा जनक, उनकी पत्नी और स्वयं सीता जी भी व्याकुल हैं। सभी लोग क्रुद्ध ऋषि को शान्त करने के उपाय सोच रहे हैं। तभी श्री रामचन्द्र आगे बढ़ते हैं; ऋषि की वन्दना करते हैं, उन्हें 'स्वामी', 'गोसाईं', 'मुनिनायक', 'नाथ' आदि सम्बोधनों से सम्बोधित करते हैं। स्वयं को उनका 'दास' बताते हैं तथा लक्ष्मण को बाल बुद्धि वाला 'नासमझ बालक' कहते हैं। श्री राम बार–बार ऋषि से क्षमायाचना करते हैं। अन्ततः श्री राम का सद्‌व्यवहार मानो ठण्डी फुहारों का काम करता है और परशुराम की क्रोधाग्नि शान्त हो जाती है। उपस्थित जनसमुदाय चैन की साँस लेता है।

इस प्रसंग से सिद्ध होता है कि सद्‌व्यवहार से प्रतिकूल परिस्थिति को भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। अच्छे भाव, अच्छे विचार और उनके अनुसार अच्छे कर्म सद्‌व्यवहार के अनिवार्य तत्त्व हैं। भाव ही विचारों के उत्प्रेरक होते हैं और विचार ही व्यवहार में परिणत होकर साकार होते हैं।

अतः सद्‌व्यवहार के लिए भाव, विचार और कर्म–तीनों का श्रेष्ठ होना अनिवार्य है। प्रश्न उठता है कि हम सद्‌व्यवहारी बनें कैसे? इसके लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। यदि बचपन से ही बालक को अच्छा, सुसंस्कृत परिवेश उपलब्ध कराया जाता है तो बड़ों का सद्‌व्यवहार देखकर वह स्वतः उनका अनुकरण करता है। तब उसको 'ऐसा करो', 'ऐसा मत करो' रटवाना नहीं पड़ता क्योंकि सदाचरण के मूलभूत तत्त्वों को वह आँखों से देखकर, कानों से सुनकर और संवेदना से ग्रहण करके कार्यरूप में उतार चुका होता है।

पात्र के स्तर के अनुसार सद्व्यवहार के रूप में भी अन्तर आ जाता है। कहीं यह औपचारिक होता है, कहीं अनौपचारिक। कभी–कभी सद्व्यवहार का एक अन्य रूप देखने में आता है, जहाँ व्यक्ति स्वार्थपूर्ति के लिए कुछ समय के लिए सद्व्यवहार का दिखावा करता है। वास्तव में, वह सद्व्यवहार होता नहीं है।

सद्व्यवहार की कसौटी विवेक है। कभी–कभी जो व्यवहार हमें गलत लगता है, वह वास्तव में उचित होता है। गुरुजन तथा माता–पिता बच्चे को उसके अनुचित कार्य पर डाँटते हैं तो बच्चे को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता परन्तु इसी में उसका हित छिपा है। यह व्यवहार सद्व्यवहार ही कहा जाएगा क्योंकि डाँटने वाले का व्यवहार विवेक की कसौटी पर कसा होता है।

सद्व्यवहार से परायों को भी अपना बनाया जा सकता है। दो राष्ट्रों के बीच की अनसुलझी समस्याएँ सद्व्यवहार से सुलझ सकती हैं। सद्व्यवहार शान्ति–स्थापना का मूल मन्त्र है और संवेदनाओं की लहलहाती फसल है।

सद्व्यवहार की शुरुआत घर–परिवार से होती है। बालक के सबसे निकटतम उसके माता–पिता होते हैं और माता–पिता को सबसे प्रिय अपनी सन्तान होती है। उनका व्यवहार सन्तान के प्रति स्वार्थरहित होता है। अतः बालक को भी अपना व्यवहार माता–पिता के प्रति दोष दृष्टि रहित होकर करना चाहिए। इस विषय में उन्हें सीखना चाहिए–

तुम औरों से व्यवहार करो ऐसा
अपने प्रति तुम करवाना चाहो जैसा।।

दूसरों की मदद करना सद्व्यवहार के अन्तर्गत आता है। एक बार भानामल नाम का एक व्यक्ति आत्महत्या के इरादे से नदी के पुल पर जा रहा था। सैर करके लौट रहे एक अन्य

व्यक्ति को उस पर सन्देह हो गया। वह भानामल के पीछे–पीछे चल पड़ा। जैसे ही भानामल नदी में कूदने को हुआ तो पीछे चल रहे व्यक्ति ने उसको पकड़ लिया और उससे ऐसा करने का कारण जानना चाहा। भानामल ने बताया कि व्यापार में घाटा होने के कारण वह यह कदम उठा रहा था। उस व्यक्ति ने भानामल की आर्थिक सहायता की और कोई काम शुरू करने को कहा। भानामल ने ऐसा ही किया। कुछ समय बाद उसकी आर्थिक स्थिति ठीक हुई तो उसने उस व्यक्ति के पैसे लौटा दिए। इस घटना के बाद भानामल ज़रूरतमन्दों की सहायता करने से नहीं चूकता था।

सेवा भावना के कार्यों में हम सच बोलें और सच बोलने में सेवा भावना का खयाल रखें। बिना सच्चाई के की जाने वाली सेवा भावना विध्वंसकारी भावना बन जाती है जबकि बिना सेवा भावना के सच्चाई केवल दिखावा होती है। इसके साथ ही ज़रूरी यह भी है कि हम ईमानदार रहें। एक ईमानदार व्यक्ति सिर्फ दिखावे के लिए नेकी का काम नहीं करता, उसे रंगे हाथ पकड़े जाने का डर नहीं होता, वह दूसरों के साथ कभी घात नहीं करता। ईमानदारी सभी गुणों की बुनियाद है।

सद्‌व्यवहार के लिए स्नेह–प्रेम भी आवश्यक है। पशु–पक्षी भी प्रेम की भाषा जानते हैं। एक बार एक किसान के बैल बीमार थे। वह अपने एक परिचित के बैलों को खेत की जुताई के लिए ले गया लेकिन कुछ समय बाद वापस आकर परिचित से शिकायती स्वर में कहा, 'दोस्त, तुम्हारे बैल बहुत अड़ियल हैं। वे कदम ही नहीं बढ़ा रहे। ऐसे में खेत की जुताई हो तो कैसे ?' बैलों के मालिक ने पूछा, 'उनकी गर्दन पर जुआ रखने के बाद क्या तुमने प्यार से ऐसा कुछ कहा–'चलो बादशाहो, काम पर चलें?'

'नहीं'

'उनकी पीठ थपथपाई?'

'नहीं तो'

'तब माफ करना, भाई। तुम्हारी ओर से, बर्ताव सम्बन्धी यह कमी रही। इसको दूर करो और फिर असर देखो। एक बात और, उनके प्रति कोई अपशब्द मत बोलना।' बैलों के मालिक ने स्पष्ट किया।

शाम को खेत से लौटकर आया किसान बैलों की प्रशंसा कर रहा था। यह था सद्‌व्यवहार का जादुई प्रभाव।

एक बार एक कॉलेज के प्रोफेसर ने समाज विज्ञान के छात्रों को एक परियोजना कार्य दिया। सभी छात्र झुग्गी–झोंपड़ी निवासी थे। उन्हें कहा गया कि प्रत्येक छात्र अपने भविष्य का आकलन कर इस बात पर बल दे कि वह भविष्य में क्या बनना चाहता है। अपने लेख में अधिकांश ने ये भाव प्रकट किए थे कि वे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए स्वयं को तैयार करना चाहते हैं। प्रोफेसर ने सभी के लेख रख लिए।

पच्चीस वर्ष बाद समाज विज्ञान के एक दूसरे प्रोफेसर को वे लेख पढ़ने का मौका मिला। उन्होंने सोचा– पता लगाया जाए कि जिन छात्रों ने अपने भविष्य का आकलन किया था, वे कहाँ तक पहुँचे? उस प्रोफेसर ने अपने नए छात्रों को उस नए परियोजना कार्य में लगाया।

पूर्ववर्ती उन सौ लड़कों में से बीस तो कहीं और जाकर बस गए थे, कुछ का देहावसान हो गया था। लगभग सत्तर छात्र मिल गए थे। नए छात्रों ने उनका इण्टरव्यू लिया। उनमें से कई लड़के वकील, डॉक्टर तो कुछ अच्छे व्यवसायी बन गए थे। जब उनसे उनकी उपलब्धि और सफलता का राज पूछा गया तो अधिकांश ने एक ही बात कही–'हमारी एक शिक्षिका थी, जिसने हमें बहुत प्रभावित किया।'

प्रोफेसर ने परियोजना को और आगे बढ़ाया। उन छात्रों ने उस शिक्षिका को भी खोज निकाला। चमकीली आँखों वाली वृद्धा शिक्षिका से छात्रों ने पूछा, 'आपने ऐसा क्या किया, जो झुग्गी–झोंपड़ी के निवासी छात्र अपने जीवन में इतने सफल हो सके?'

शिक्षिका ने दो पल के लिए आँखें बन्द कीं और फिर काँपती आवाज में कहा, 'मैंने उन्हें अपने मन में झाँकने के लिए प्रेरित किया, जिससे उनका व्यवहार सात्त्विक और आचरण शुचितापूर्ण हो गया। उनकी उपलब्धि का यही एकमात्र रहस्य है।'

सौभाग्य से उन छात्रों के जीवन में एक ऐसी शिक्षिका आई थी, जिसने उनके सोच–विचार को परिवर्तित किया। यदि लोग परस्पर सद्व्यवहार करें तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन निश्चित ही हो सकता है। ध्यान रहे, सद्व्यवहार रस्म अदायगी नहीं बल्कि सामाजिकता की सीढ़ी का एक महत्त्वपूर्ण पायदान है। किसी ने ठीक ही कहा है–

पुरखों के अनमोल वचन हैं, काम हमेशा आएँगे।
जो कुछ हम दुनिया को देंगे, दुनिया से वह पाएँगे।।

अभ्यास

1. सद्व्यवहार से क्या तात्पर्य है ?
2. सद्व्यवहार के अनिवार्य तत्त्व क्या हैं ?
3. समाज में सद्व्यवहार की आवश्यकता, विषय पर अपने विचार लिखो।
4. अच्छे व्यवहार द्वारा प्रतिकूल परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, उदाहरण सहित पुष्टि करो।
5. ईमानदारी को सभी गुणों की बुनियाद कैसे माना गया है? स्पष्ट करो।
6. इस पाठ में आए विभिन्न प्रसंगो में से आप को सबसे अच्छा प्रसंग कौन सा लगा और क्यों?
7. जो कुछ हम दुनिया को देंगे, दुनिया से वह पाएँगे, विषय पर एक आलेख तैयार करो।
8. पुस्तकालय से पुस्तक लेकर सद्व्यवहार सम्बन्धी सामग्री पढ़ो और प्राप्त निष्कर्ष पर सहपाठियों से चर्चा करो।
9. सद्व्यवहार सुख–शान्ति का मूलमन्त्र है, विषय पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।
10. अपना कोई अनुभव बताओ, जब किसी के सद्व्यवहार ने आपको बहुत प्रभावित किया हो।
11. सद्व्यवहार सम्बन्धी कुछ सूक्तियाँ एकत्र करो और चार्ट पर लिखकर कक्षा में लगाओ।

14 पर्यावरण संरक्षण

'पर्यावरण' शब्द परि+आवरण से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है– परि (चारों तरफ) आवरण (घेरा)। जो कुछ हमें चारों तरफ से घेरे हुए है, वह सब पर्यावरण है। मिट्टी, जल, वायु, मृदा, प्राणी आदि सभी पर्यावरण के घटक अंग हैं। इनमें परस्पर होने वाली भौतिक–जैविक प्रक्रियाएँ भी पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं। विभिन्न तत्त्वों की आनुपातिक भिन्नता के कारण अलग–अलग स्थानों के पर्यावरण में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। किसी स्थान विशेष के पर्यावरण निर्माण में मानव अन्तिम महत्त्वपूर्ण व क्रियाशील घटक है।

सबसे बुद्धिमान प्राणी होने से मानव ने पर्यावरण का दोहन सबसे अधिक किया है। उसने नवीन तकनीक पर आधारित कलपुर्जों तथा मशीनों के आविष्कार से कृषि, उद्योग तथा व्यवसाय के क्षेत्र में अपूर्व बदलाव लाकर विकास की नई परिभाषा गढ़ ली है। ऐसा विकास, जिसमें उसने वर्तमान पीढ़ी की खुशहाली के लिए अगली पीढ़ी के विनाश की नींव रख दी है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने प्राणी मात्र के लिए संकट खड़ा कर दिया है। जल, थल और नभ कोई भी उससे अछूता नहीं है। सब कुछ उपभोग कर लेने की मानव–प्रवृत्ति एक नए प्रकार के पर्यावरण की रचना कर रही है, जिसमें जाने अनजाने सब कुछ दूषित हो रहा है।

पर्यावरण में अवांछित तत्त्वों की वृद्धि ने मिट्टी, जल, वायु आदि को प्रदूषित कर दिया है।

जल प्रदूषण –

मानव ने नदियों से नहरें निकालकर बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया और अन्न के भण्डार भर लिए। वह विद्युत उत्पादन कर अनेक कार्य सिद्ध कर रहा है लेकिन अफसोस यह कि वह जल के सीमित प्रयोग की बात भूल गया। इसलिए आज हमें जल संकट का सामना करना पड़ रहा है। जल के साथ–साथ जंगल, ज़मीन, समुद्र, तटीय संसाधन एवं जैव विविधता सब दबाव की परिधि में आ चुके हैं। पर्यावरण पर विकास का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। औद्योगिक अपशिष्ट तथा नगरों में बसे मानव द्वारा विसर्जित मल–मूत्र जल को प्रदूषित करता है। प्रदूषित जल हैजा, टायफाइड, मलेरिया, पीलिया और चर्म रोग आदि का कारण बनता है। नदियाँ आज इतनी दूषित हो गई हैं कि गंगा स्वच्छता अभियान जैसे कार्यक्रम चलाने पड़ रहे हैं। इस सम्बन्ध में कवि डॉ. ध्रुवेन्द्र भदौरिया लिखते हैं–

गन्दगी का भार ढोकर, रो रही पावन नदी है।
जो सुधा की वाहिका थी, आज मैले से लदी है।

जल जीवन की अनिवार्यता है। जल की शुद्धि के लिए हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि पानी में मल–मूत्र, थूक–खून, जहरीले पदार्थ या अन्य दूषित पदार्थ न जाएँ। अब प्रश्न उठता है, जल के संरक्षण का – इसका संरक्षण कैसे करें? कौन करे? धन कौन जुटाए आदि? इस विषय में, आदर्श रूप में, मैगसेसे पुरस्कार से पुरस्कृत राजेन्द्र सिंह का उदाहरण ले सकते हैं, जिन्होंने ग्रामीण समुदाय के सहयोग से राजस्थान के अलवर जिले की धरती को पुनः हरा–भरा बनाने में सफलता हासिल की। उन्होंने सूख चुके जोहड़ों की पुनः खुदाई करवाई। उनमें वर्षा का पानी संगृहीत होने लगा और धीरे–धीरे भूजल–स्तर बढ़ा। लोगों ने श्रमदान, धनदान दिया और खोई हुई खुशियाँ पुनः प्राप्त कीं। आवश्यकता है कि सब जगह इस प्रकार के साँझे प्रयत्न से जल का संग्रहण किया जाए। वर्षा जल के संरक्षण में आम लोगों की सहभागिता से जल संकट दूर हो सकता है। हमारा दायित्व है कि–

- तालाबों, जोहड़ों आदि में कपड़े न धोएँ।
- आवश्यकतानुसार ही पानी का प्रयोग करें।
- नहाने के लिए बालटी, मग का प्रयोग करें।
- प्रयोग किए गए अशुद्ध पानी को शुद्ध करने की व्यवस्था करें।
- वाहनों को नलिका की सहायता से न धोएँ।
- औद्योगिक अपशिष्ट नदियों में न डाले जाएँ, इसके लिए कड़े कानून हों और उनका ईमानदारी से पालन हो।

वायु प्रदूषण :

सड़कों पर बढ़ती वाहनों की संख्या, उनसे निकलते धुएँ, चिमनियों के धुएँ ने वायु को इतना प्रदूषित कर दिया है कि ठीक से साँस लेना मुश्किल हो रहा है। दमा, अस्थमा आदि के रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। वातानुकूलित वाहनों के अधिक प्रयोग आदि से ओजोन परत क्षीण हो रही है, जिससे कई तरह की बीमारियाँ बढ़ रही हैं। सरकार ने 'वायु गुणवत्ता सूचकांक' (ए.क्यू.आई.) जारी किया है। इसके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने घर पर ही अपने शहर की वायु की गुणवत्ता की जाँच कर सकता है।

वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

- वाहनों का सीमित प्रयोग करें।
- यदि एक ही संस्थान में आस–पास के कई कर्मचारी जाते हैं तो वे अलग–अलग गाड़ियों में जाने की अपेक्षा एक गाड़ी से जाएँ। ऐसा करने से पैट्रोल की बचत होगी और प्रदूषण पर भी रोक लगेगी।
- यातायात के सार्वजनिक साधनों का प्रयोग करें।
- सप्ताह में दो–तीन दिन साइकिल का प्रयोग करें।
- छोटी दूरियाँ पैदल तय करें।
- कारखानों की चिमनियाँ ऊँची व प्रदूषण नियन्त्रक बोर्ड के नियमानुसार होनी चाहिए।
- खेतों में पराली न जलाएँ।
- अधिक से अधिक संख्या में पौधे लगाएँ व उनके बड़े होने तक देखभाल करें। नीम, बरगद, इमली, चीड़, अशोक आदि वृक्षों में शोर के अवशोषण की अद्भुत क्षमता है। इसलिए इनके रोपण को बढ़ावा दिया जाए।

ध्वनि प्रदूषण –

वातावरण में एक निश्चित सीमा से अधिक स्तर का तरह–तरह का शोर ध्वनि प्रदूषण का कारण बनता है। इसमें शामिल है– वाहनों के हार्न की आवाजें, लाउडस्पीकर पर तेजी से बजता गीत संगीत, तेज आवाज में चल रहे रेडियो, टी.वी., टेप रिकार्डर आदि। इससे हमारी एकाग्रता नष्ट होती है, नींद में कमी आती है, स्मरण शक्ति व श्रवण शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ध्वनि प्रदूषण से बचने के उपाय –

- टी.वी., रेडियो, टेप रिकार्डर आदि की आवाज कम रखें।
- लाउडस्पीकर लगाने के लिए सरकारी अनुमति की व्यवस्था हो।
- आतिशबाजी छोड़ने से परहेज करें।

मृदा प्रदूषण :

खेतों में कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों व उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषण बढ़ रहा है। माना कि इन सब के प्रयोग से उत्पादन में तो वृद्धि हो जाती है परन्तु इनके माध्यम से मिट्टी से अनाज, फलों–सब्ज़ियों में पहुँचने वाले रसायन हमारे स्वास्थ्य को चौपट कर रहे हैं। यहाँ तक कि ये रसायन पक्षियों के लिए भी खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं।

मृदा प्रदूषण से बचाव के उपाय :

- कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों व उर्वरकों का सीमित मात्रा में प्रयोग किया जाना चाहिए।
- प्लास्टिक से बनी वस्तुओं का कम से कम प्रयोग करें क्योंकि प्लास्टिक जल्दी से गलता नहीं है।

सचमुच, पर्यावरण एक विषय नहीं, एक दृष्टि है– जीव–जगत को देखने की दृष्टि, मानव समाज को देखने–परखने की दृष्टि। यह दृष्टि स्वस्थ रहे, पर्यावरण शिक्षा की मूल चिन्ता यही है। मनुष्य न तो पर्यावरण का दास है, न स्वामी। पर्यावरण के प्रति स्वस्थ सोच अपनाकर ही मनुष्य इसका समुचित उपयोग कर सकता है। संसाधनों के प्रति आत्मीयता स्थापित हो, यह हमारी सोच का हिस्सा बने। वेद में भी कहा गया है कि माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्यां। अर्थात् भूमि हमारी माता है और हम पृथ्वी के पुत्र हैं। जिस माता के अन्न–रस से हम प्राण पाते हैं, उसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले हम मानव हैं तो इसको सँवारने, सुरक्षित रखने का दायित्व भी हमारा ही है। ऐसा करने से ही मानव और पर्यावरण की समुचित सुरक्षा हो सकेगी। हमारी एक साझी सोच हो– संसाधन सलामत रहें।

अभ्यास

1. पर्यावरण से क्या अभिप्राय है?
2. मनुष्य स्वयं पर्यावरण प्रदूषण का एक कारण है– आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं? दैनिक जीवन से उदाहरण देकर स्पष्ट करो।
3. 'जल के सीमित प्रयोग' से क्या अभिप्राय है?
4. 'पर्यावरण से हम हैं, हमसे है पर्यावरण' विषय पर कक्षा में चर्चा करो, चर्चा का निष्कर्ष कॉपी में लिखो।
5. 'ध्वनि प्रदूषण न हो इसके लिए आप किन–किन बातों का ध्यान रखते हो? सूची बनाओ।
6. 'जल है तो कल है' विषय पर एक पोस्टर बनाकर कक्षा में लगाओ।
7. कड़े कानून से पर्यावरण संरक्षण सम्भव है, आप इस कथन से सहमत हैं या असहमत ? तर्क सहित पुष्टि करो।
8. 'सब संसाधन रहें सलामत' विषय पर एक आलेख तैयार करो।
9. पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता लाने के लिए आप क्या योगदान दे सकते हैं?
10. 'वृक्षों की महिमा है न्यारी' विषय पर कोई गीत, कविता लिखो व अपने साथियों को सुनाओ।

15 बोध कथाएँ

महात्मा बुद्ध ने लगभग अढाई हजार वर्ष पहले ज्ञान प्राप्त किया और लोगों को दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय बताया। उनके द्वारा बताया गया ज्ञानमार्ग आज भी प्रासंगिक है। हम चाहे जो भी हों अथवा जहाँ भी रहें, हम सभी सुख चाहते हैं, दुःख नहीं। बुद्ध ने सुझाया कि दुःख को दूर करने के लिए हमें यथासम्भव दूसरों की सहायता करनी चाहिए और यदि हम सहायता नहीं कर सकते तो कम से कम किसी को हानि भी न पहुँचाएँ। बौद्ध धर्म का उद्देश्य मनुष्य सहित सभी प्राणियों की सेवा करना है। बुद्ध ने निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा कर हमारे समक्ष सन्तोष और सहिष्णुता का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आज मानव को हिंसा, शत्रुता, द्वेष, लोभ आदि कुप्रवृत्तियों से मुक्ति के लिए बौद्ध दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करने की आवश्यकता है। आपसी शत्रुता के बारे में बुद्ध ने कहा था, ''वैर से वैर शान्त नहीं होता। अवैर से ही वैर शान्त होता है।'' यह सुनहरा सूत्र सर्वदा सार्थक है। डॉ. अम्बेडकर ने भी कहा था कि हिंसा द्वारा प्राप्त की गई जीत स्थायी नहीं होती क्योंकि उसे प्रतिहिंसा द्वारा हमेशा पलटे जाने का डर रहता है। अतः वैर को जन्म देने वाले कारकों को बुद्ध ने पहचानकर उनको दूर करने का मार्ग बहुत पहले ही प्रशस्त किया था। उन्होंने मानव मात्र के दुःखों को कम करने के लिए पंचशील और अष्टांगिक मार्ग के जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया था।

महात्मा बुद्ध को अहिंसावाद का प्रबल पक्षधर माना जाता है। सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य हिंसा की निन्दा करता है। अपने उपदेशों में बुद्ध कहते हैं कि सभी को अपने जैसा समझो। यह कथन मानवतावाद का सबसे बड़ा उद्‌घोष है। बौद्ध कथाओं से समाज को शील, सदाचार, नैतिकता,

मानव–कल्याण और सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, संयम, दया, मित्रता, करुणा, सहयोग, सेवा, आदि की शिक्षा मिलती है।

कथा–1 सुख का असली रहस्य

अधेड़ अवस्था पार कर चुका एक किसान एक बौद्ध मठ के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। जब भिक्षुओं ने मठ का द्वार खोला तो उस किसान ने अपना परिचय कुछ इस प्रकार दिया, 'भिक्षु मित्रो! मैं अज्ञानी हूँ लेकिन परिश्रम कर सकता हूँ। मैं आप लोगों से ज्ञान प्राप्त कर आगे बढ़ना चाहता हूँ।' किसान से और अधिक बातचीत करने के बाद भिक्षु इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसान में समझदारी का अभाव है और वह व्यवहारकुशल भी नहीं है। अतः ज्ञान प्राप्त करना उसके बस की बात नहीं है और आत्मविकास के विषय में समझ पाना तो उसके लिए असम्भव–सा लगता है किन्तु वह आशा और विश्वास से परिपूर्ण है। भिक्षुओं ने उससे कहा, 'भले आदमी! तुम्हें इस मठ की सफाई की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सौंपी जाती है। तुमने इस मठ को पूरी तरह से साफ रखना है। इसके बदले तुम्हें यहाँ रहने और खाने–पीने की सुविधा प्रदान की जाएगी।'

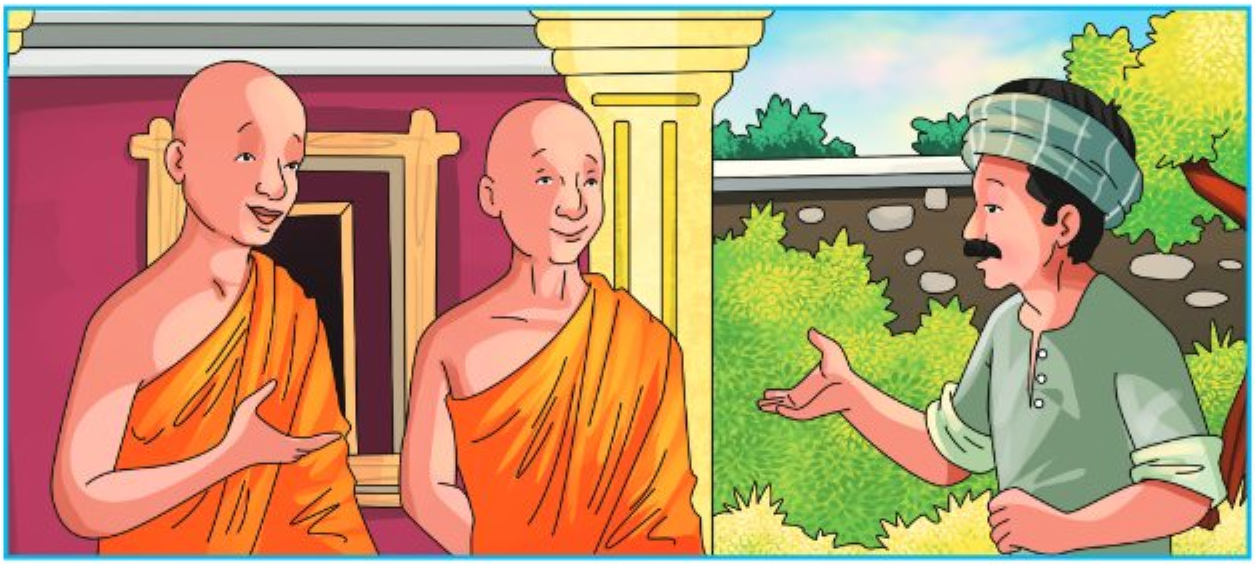

कुछ माह पश्चात् उस मठ के भिक्षुओं ने पाया कि किसान अब अधिक समझदार व व्यवहारकुशल हो गया है। अब उसके चेहरे पर हर समय एक मुस्कान फैली रहती है और उसकी आँखों में एक अभूतपूर्व चमक दिखाई देती है। वह सुखी, सन्तुष्ट, सन्तुलित और शान्त भी दिखाई देता है। भिक्षुओं से रहा न गया तो अन्ततः उन्होंने किसान से पूछ ही लिया, 'भले आदमी, जबसे तुम यहाँ आए हो, तुम्हारे भीतर एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक परिवर्तन हुआ है। क्या तुम किसी विशेष नियम या ध्यान का पालन कर रहे हो, जिससे यह सम्भव हो पाया?'

किसान ने उत्तर दिया, 'नियम या ध्यान तो मैं जानता नहीं लेकिन मेरे भाइयो! मैं पूरी लगन, मेहनत और प्रेम से अपने लक्ष्य को पूर्ण करने में लगा रहता हूँ। मेरा लक्ष्य है इस मठ को स्वच्छ रखना। जैसे–जैसे मैं इस मठ के कूड़े–कर्कट को साफ करता हूँ वैसे–वैसे मेरा मन भी कुण्ठाओं और बुराइयों से साफ होता जा रहा है। इस बात से मैं पहले से अधिक सुखी भी हूँ।'

कथा – 2 दान की महिमा –

जब महात्मा बुद्ध का पाटलिपुत्र में शुभागमन हुआ तो हर व्यक्ति अपनी–अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार उन्हें उपहार देने की योजना बनाने लगा। राजा बिम्बिसार ने भी कीमती हीरे, मोती और रत्न उन्हें पेश किए। बुद्ध ने सबको एक हाथ से सहर्ष स्वीकार किया।

इसके बाद मन्त्रियों, सेठों, साहूकारों ने अपने–अपने उपहार उन्हें अर्पित किए और बुद्ध ने उन सबको भी एक हाथ से स्वीकार किया।

इतने में लाठी टेकती हुई एक बुढ़िया वहाँ आई। महात्मा बुद्ध को प्रणाम कर वह बोली, 'भगवन्! जिस समय आपके आने का समाचार मुझे मिला, उस समय मैं यह अनार खा रही थी। मेरे पास कोई दूसरी चीज़ न होने के कारण मैं इस अधखाए फल को ही ले आई हूँ। यदि आप मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें, तो मैं इसे अपना अहोभाग्य समझूँगी।'

भगवान बुद्ध ने दोनों हाथ सामने कर वह फल ग्रहण किया। राजा बिम्बिसार ने जब यह देखा तो उन्होंने बुद्धदेव से कहा, 'भगवन्, क्षमा करें! एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। हम सबने आपको कीमती और बड़े–बड़े उपहार दिए, जिन्हें आपने एक ही हाथ से ग्रहण किया लेकिन इस बुढ़िया द्वारा दिए गए छोटे एवं जूठे फल को आपने दोनों हाथों से ग्रहण किया, ऐसा क्यों?'

यह सुनकर बुद्ध मुस्कराए और बोले, ''राजन्! आप सबने बहुमूल्य उपहार अवश्य दिए हैं किन्तु यह सब आपकी सम्पत्ति का दसवाँ हिस्सा भी नहीं है। आपने यह दान दीनों और गरीबों की भलाई के लिए नहीं किया इसलिए आपका यह दान 'सात्विक दान' की श्रेणी में नहीं आ सकता। इसके विपरीत इस बुढ़िया ने अपने मुँह का कौर ही मुझे दे डाला है। भले ही यह बुढ़िया निर्धन है लेकिन इसे सम्पत्ति की कोई लालसा नहीं है। यही कारण है कि इसका दान मैंने खुले हृदय से, दोनों हाथों से स्वीकार किया है।''

अभ्यास

1. महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक कैसे हैं?
2. बुद्धदेव ने आपसी शत्रुता समाप्त करने के लिए क्या उपाय सुझाया?
3. किस प्रकार की जीत स्थायी नहीं होती?
4. महात्मा बुद्ध ने मानव मात्र के दुःख दूर करने के लिए किस मार्ग का प्रतिपादन किया?
5. सुख का असली रहस्य क्या है, पाठ में वर्णित घटना के आधार पर लिखो।
6. महात्मा बुद्ध ने बुढ़िया के उपहार को ही दोनों हाथों से क्यों स्वीकार किया?
7. शबरी द्वारा राम को दिए गए जूठे बेर और बुढ़िया द्वारा बुद्ध को दिया गया जूठा अनार, बहुमूल्य उपहारों से अधिक उत्कृष्ट क्यों है?
8. सच्ची लगन, मेहनत और प्रेम से लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, विषय पर एक आलेख तैयार करो।
9. दान व उपहार सम्बन्धी ऐसे प्रंसगों को एकत्रित करो, जहाँ सामान्य वस्तु को रत्नों से भी मूल्यवान माना गया हो।
10. 'परिवेश का कूड़ा–कर्कट साफ करने से मन की बुराइयाँ भी साफ़ हो जाती हैं।' यदि आपने भी कभी ऐसा अनुभव किया है तो चर्चा करो।
11. अपने जीवन का कोई अनुभव बताओ, जब आपने उपहार में मिली किसी वस्तु को बहुत सँभालकर रखा हो।
12. उपहार छोटा है या बड़ा, यह बात विशेष महत्त्व की नहीं है। महत्त्व है तो केवल उपहार देने वाले की भावना का, इस तथ्य पर अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।

16 माता का आदर्श

प्राचीन काल में विदुला नाम की एक अत्यन्त बुद्धिमती एवं तेजस्विनी क्षत्राणी थी। उनका पुत्र संजय युद्ध में शत्रु से पराजित हो गया था। पराजय ने उसका साहस तोड़ दिया। वह निराश होकर घर में पड़ा रहा। अपने पुत्र को निठल्ला पड़ा देखकर विदुला उसे फटकारने लगी– अरे कायर! तू मेरा पुत्र नहीं है। तू कुलकलंकी, वीरों के द्वारा प्रशंसित इस कुल में क्यों उत्पन्न हुआ? तू डरपोकों की भाँति पड़ा है। यदि तेरी भुजाओं में शक्ति है तो शस्त्र उठा और शत्रु का नाश कर। कायर लोग थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं परन्तु तू तो क्षत्रिय है। महत्ता प्राप्त करने के लिए ही मैंने तुझे जन्म दिया है। उठ! युद्ध के लिए प्रस्तुत हो।

पुत्र! तेरे लिए विजय प्राप्त करना उचित है अन्यथा तू युद्ध में प्राण त्यागकर योगियों के लिए भी दुर्लभ परम पद प्राप्त कर ले। क्षत्रिय रोग से शय्या पर पड़े–पड़े प्राण त्यागने को उत्पन्न नहीं होता। युद्ध क्षत्रिय का धर्म है। धर्म से विमुख होकर तू क्यों जीवित रहना चाहता है? तू कायर बनकर धर्म की राह छोड़ रहा है। तेरे कारण कुल डूब रहा है, उसका उद्धार कर। साहसी बनकर पराक्रम दिखा।

समाज में जिसके महत्त्व की चर्चा नहीं होती या उत्तम पुरुष जिसे सत्कार के योग्य नहीं मानते, वह गणना बढ़ाने वाला पृथ्वी का व्यर्थ भार है। दान, सत्य, तप, विद्या और शान में से किसी क्षेत्र में जिसको यश नहीं मिला, वह तो मिट्टी के लौंदे के समान है। पुरुष वही है, जो शास्त्रों के अध्ययन, शस्त्रों के प्रयोग, तप अथवा ज्ञान में श्रेष्ठता प्राप्त करे। कायरों तथा मूर्खों के समान भीख माँगकर जीविका चलाना तेरे योग्य कार्य नहीं है। लोगों के अनादर का पात्र होकर, भोजन, वस्त्र के लिए दूसरों का मुख ताकने वाले तो बन्धुवर्ग को भी शूल की भाँति चुभते हैं।

हाय! ऐसा लगता है कि हमें राज्य से निर्वासित होकर कंगाल दशा में मरना पड़ेगा। तू कुल का कलंकी है। अपने कुल के अयोग्य काम करने वाला है। तुझे जन्म देने के कारण मैं भी अपयश की भागिनी बनी हूँ। मेरा मन कहता है कि कोई भी नारी तेरे समान उत्साहहीन पुत्र उत्पन्न न करे। वीर पुरुष के लिए शत्रुओं के मस्तक पर क्षण भर प्रज्वलित होकर बुझ जाना भी श्रेयस्कर है। जो आलसी है, वह कभी महत्त्व नहीं पाता। इसलिए अब तू भी पराजय की ग्लानि त्याग कर परिश्रमपूर्वक प्रयास कर।

निराश संजय यह सब सुनता रहा। वह माँ के सामने कुछ भी नहीं बोल पाया।

यह देखकर विदुला बोली– मैं चाहती हूँ कि तेरे शत्रु पराजय, कंगाली और दुःख के भागी बनें और तेरे मित्र आदर तथा सुख प्राप्त करें। तू पराए अन्न से पलने वाले दीन पुरुषों–सा मत बन। साधुजन और मित्रगण तेरे आश्रय में रहकर तुझसे जीविका प्राप्त करें, ऐसा प्रयत्न कर। पके फलों से लदे वृक्ष के समान, लोग जीविका के लिए जिसका आश्रय लेते हैं, उसी का जीवन सार्थक है।

पुत्र, स्मरण रख कि यदि तू मेहनत का पथ छोड़ देगा तो शीघ्र ही तुझे नीच लोगों का मार्ग अपनाना पड़ेगा। तेरे शत्रु इस समय प्रबल हैं, किन्तु तुझमें उत्साह हो और तू मेहनत करे तो उनके शत्रु तुझसे आ मिलेंगे। तेरे हितैषी भी तेरे पास एकत्र होने लगेंगे। बन्द पड़े सब रास्ते स्वतः खुल जाएँगे। तेरा नाम संजय है, किन्तु जय पाने का कोई लक्षण तुझमें नहीं दीख पड़ता। तू अपने नाम को सार्थक कर।

पुत्र! हार हो या जीत, राज्य मिले या न मिले, दोनों को समान समझकर तू दृढ़ संकल्पपूर्वक युद्ध कर। जय–पराजय तो काल के प्रभाव से सबको प्राप्त होती है, किन्तु उत्तम पुरुष वही है, जो कभी निराश नहीं होता। संजय! मैं श्रेष्ठ कुल की कन्या हूँ, श्रेष्ठ कुल की पुत्रवधू हूँ और श्रेष्ठ पुरुष की पत्नी हूँ। यदि मैं तुझे गौरव बढ़ाने योग्य उत्तम कार्य करते नहीं देखूँगी तो मुझे शान्ति कैसे मिलेगी! कायर की माता कहलाने की अपेक्षा तो मेरा मर जाना ही उत्तम है। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो शत्रु को पराजित करने का प्रयत्न कर। अन्यथा सदा के लिए पराश्रित दीन रहने की अपेक्षा तेरा मर जाना बेहतर है।

माता के इस प्रकार ललकार भरने पर भी संजय ने कहा– माता! तू करुणाहीन व पत्थर दिलवाली है। मैं तेरा एकमात्र पुत्र हूँ। यदि मैं युद्ध में मारा गया तो तू राज्य और धन लेकर कौन–सा सुख पाएगी कि मुझे युद्ध भूमि में भेजना चाहती है?

विदुला ने कहा– बेटा! मनुष्य को धर्म और अर्थ के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मैं उसी धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिए तुझे युद्ध में भेज रही हूँ। यदि तू शत्रु द्वारा मारा गया तो यश प्राप्त करेगा– मुक्त हो जाएगा और यदि विजयी हुआ तो संसार में सुखपूर्वक राज्य करेगा। गीता में कृष्ण ने भी अर्जुन को यही सीख प्रदान की थी– 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।'

कर्तव्य से विमुख होने पर समाज में तेरा अपमान होगा। मैं मोहवश तुझे इस अनिष्ट से न रोकूँ तो वह मातृ स्नेह का अपमान होगा। तू कर्मपथ छोड़कर लोक में अपमान सहे और मरने पर कर्तव्यभ्रष्ट लोगों की अधम गति पाए, ऐसे मार्ग पर मैं तुझे नहीं जाने दूँगी। इसलिए सज्जनों द्वारा निन्दित कायरता के मार्ग को तू छोड़ दे। जो माता सदाचारी, परिश्रमी, विनीत पुत्र पर स्नेह प्रकट करे, उसी का स्नेह सच्चा है। श्रम, विनय तथा सदाचरण से रहित पुत्र पर स्नेह करना व्यर्थ है। शत्रु को विजय करने या युद्ध में प्राण देने के लिए क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। तू अपने जन्म को सार्थक कर।

माता के इस प्रकार वचन सुनकर संजय का सोया शौर्य जाग्रत हो गया। उसका उत्साह सजीव हो उठा। उसने माता की आज्ञा स्वीकार की। भय और उदासी को तजकर वह सैन्य–संग्रह में जुट गया। अन्त में शत्रु को पराजित करके उसने अपने खोए हुए राज्य पर अधिकार कर सम्मान प्राप्त किया।

अभ्यास

1. युद्ध में पराजय का संजय के मन पर क्या प्रभाव पड़ा?
2. मनुष्य के जीवन की सार्थकता किसमें है?
3. यज्ञ, दान और भोग करने के लिए क्या आवश्यक है?
4. किस प्रकार के व्यक्तियों का जीवन व्यर्थ है?
5. व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा अपयश क्या है?
6. क्या संजय की माता विदुला राज्य, धन तथा दूसरे सुख भोग प्राप्त करने मात्र के लिए उसे युद्ध के लिए प्रोत्साहित कर रही थी?
7. विदुला के उद्‌गारों से उसके चरित्र की किन विशेषताओं का पता चलता है?
8. कर्तव्यविमुख व्यक्ति को समाज किस दृष्टि से देखता है?
9. कर्मपथ का त्याग करने पर मनुष्य की स्थिति कैसी हो जाती है?
10. पाठ के आधार पर बताओ, गीता में कृष्ण ने अर्जुन को क्या सीख दी थी?
11. स्नेह और मोह में क्या अन्तर है? स्नेह को श्रेय और मोह को हेय दृष्टि से क्यों देखा जाता है?
12. अपने या अपने किसी परिचित के ऐसे अनुभव को शब्दबद्ध करो, जब गहन हताशा से उबरकर उद्देश्य को सिद्ध किया गया हो।
13. ऐसे जीवन–चरित्रों या प्रसंगों का संकलन करो, जब लोगों ने अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्य का पालन किया हो।

17 काक और हंस

किसी समुद्रतटवर्ती राज्य में एक वैश्य रहता था। वह दयालु और दानपरायण था। उसके पुत्र अल्पवयस्क थे और वे प्रतिदिन एक काक को अपना जूठा भोजन दिया करते थे। उनके जूठे भोजन को खाकर वह काक हृष्ट–पुष्ट हो गया। वह गर्वित होकर अपने सजातियों को अपमानित करने लगा। एक बार मानसरोवरवासी तीव्र गति वाले कुछ हंस समुद्र तट पर आए। तब काक ने एक हंस के साथ उड़ान भरने की बाजी लगाई। इस पर सारे हंसों ने हँसी उड़ाते हुए उस काक से कहा, ''हम मानसरोवरवासी हंस हैं और सर्वत्र उड़ते रहते हैं। तुम काक होकर हमें क्यों चुनौती देते हो?''

हंसों की बात सुनकर काक ने उनकी निन्दा की और अपनी प्रशंसा करते हुए बोला, ''मैं एक सौ एक प्रकार की उड़ानें भरना जानता हूँ। उनमें से प्रत्येक उड़ान शतयोजन की होती है। मेरी उड़ानें अद्भुत होती हैं। यथा– ऊँचा उड़ना, नीचा उड़ना, चारों ओर उड़ना तथा तिरछा उड़ना आदि। जब मैं तुम्हें ये सब गतियाँ दिखाऊँगा, तब तुम्हें मेरी शक्ति पर विश्वास होगा। तुम बताओ कि मैं कौन–सी उड़ान भरूँ?'' तब हंस ने हँसकर कहा, '' काक! तुम अवश्य ही सौ से अधिक प्रकार की उड़ानें भर सकते हो; किन्तु मैं एक ही प्रकार की उड़ान में दक्ष हूँ। तुम्हें जो उड़ान उचित लगे, उसी से उड़ो।''

यह सुनकर वहाँ उपस्थित अन्य काक कहने लगे, ''यह हंस एक ही उड़ान से सौ प्रकार की उड़ानों को कैसे जीत सकता है?'' तब काक और हंस स्पर्धा करते हुए उड़ने लगे। काक अलग–अलग प्रकार की उड़ानों से दर्शकों को चकित करने लगा। हंस अपनी एक ही प्रकार की मृदुल गति से उड़ता रहा। काक की तुलना में उसकी गति अति मन्द थी। यह देखकर अन्य काक हंसों का तिरस्कार करने लगे, ''देखो, हंस काक से पिछड़ता जा रहा है।'' यह सुनकर हंस ने उत्तरोत्तर वेग बढ़ाते हुए उड़ना आरम्भ किया। काक थकावट महसूस कर रहा था। उसे विश्राम करने के लिए कोई वृक्ष या द्वीप दिखाई नहीं दे रहा था। घबराकर वह सोचने लगा– मैं थककर कहीं समुद्र में ही न गिर जाऊँ। अन्ततः वह हंस के पास गया। जब हंस ने देखा कि काक समुद्र जल में गिरने वाला ही है तो उसे बचा लेने के उद्देश्य से उसने कहा, ''बन्धु! तुमने अपनी अनेक प्रकार की उड़ानों का बखान करते समय अपनी इस गुप्त उड़ान का जिक्र नहीं किया। इस समय तुम किस उड़ान से उड़ रहे हो? तुम्हारी चोंच और पंख तो जल का स्पर्श कर रहे हैं।''

तब काक बोला, ''भाई हंस! हम तो काक हैं; व्यर्थ काँव–काँव करते रहते हैं। इस समय मेरे प्राण तुम्हारे अधीन हैं। तुम मुझे तट पर ले चलो।'' ऐसा कहकर वह जल में गिर पड़ा।

यह देखकर हंस ने कहा, ''विविध प्रकार की उड़ानों में दक्ष होकर भी तुम समुद्र में कैसे गिर गए?'' काक ने उत्तर दिया, ''जूठे अन्न का भक्षण करते–करते मेरा मन विचलित हो गया था और मैं स्वयं को गरुड़ के समान मानने लगा था; सजातीय काकों तथा अन्य पक्षियों का अपमान भी करता था। किन्तु अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ। तुम मुझे किसी द्वीप या तट पर पहुँचा दो। यदि मैं जीवित रहा तो भविष्य में किसी का अपमान नहीं करूँगा।'' ऐसा कहकर वह अचेत–सा होकर जल में डूबने लगा। हंस को उस पर दया आ गई; उसने पंजों से पकड़कर काक को अपनी पीठ पर लाद लिया और उसे लेकर उसी स्थान पर लौटा, जहाँ से वे दोनों प्रतिस्पर्धा करते हुए उड़े थे। वहाँ जाकर उसने काक को धैर्य बँधाया और स्वयं उड़कर दूर देश को चला गया।

अभ्यास

1. जैसा खाएँगे अन्न वैसा बनेगा मन, काक के सन्दर्भ में इस उक्ति की पुष्टि करो।
2. किस भय के वशीभूत होकर काक को अपनी गलती स्वीकार करनी पड़ी?
3. इस कहानी से हमें क्या सन्देश मिलता है? अपने शब्दों में लिखो।
4. थोथा चना बाजे घना, उक्ति पर अपने विचार व्यक्त करो।
5. कहानी के अन्त में हंस की भूमिका– नेकी कर कुएँ में डालने वाले की रही, कैसे?
6. अपना कोई अनुभव बताओ, जब आपने अपनी गलती के लिए पश्चात्ताप किया हो।
7. यदि काक के स्थान पर आप होते, तो हंस के साथ प्रतिस्पर्धा में आपकी क्या भूमिका होती?
8. प्रशंसा का महत्त्व तब ही है, जब वह किसी अन्य के द्वारा की जाए, आत्मप्रशंसा प्रायः महत्त्वहीन होती है, इस सन्दर्भ में अध्यापक कक्षा में चर्चा कराएँ।